Chap-4

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी एवं गुजराती प्रगीत काव्य में नाटकीय तत्व

वियोगावस्था में दुःख, विस्मय, व्यंग्य, उपहास और कटु स्मृति के कारण बन जाते हैं। श्रीकृष्ण के वियोगानल से संतप्त गोपियां कभी तो प्रकृति पर ही झुंझलाकर बरस पड़ती हैं, कभी कृष्ण और कृष्ण के प्रतीक मधुकर, कृष्ण की प्रेयसी कुब्जा और कृष्ण के आदेशानुसार ब्रज में उपदेश देने आए कृष्ण के सखा उद्धव पर मर्म-भेदी व्यंग्य बाण बरसाती हैं। इन उपालंभों में उनके प्रेम-विह्वल हृदय के गहनतम भाव व्यक्त हुए हैं। चतुर्थ हृदय से निकले हुए इन भावपूर्ण उपालंभों के कारण भ्रमरगीत काव्य अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है।

कृष्ण के प्रति उपालंभ :

उद्धव के आगमन के पूर्व गोपियों के हृदय में मधुर-मिलन की आशा बनी हुई थी। उन्होंने प्रियतम को बुलाने के लिए अनेक पत्र भी लिखे थे। श्रीकृष्ण के स्थान पर उद्धव जी को आये देखकर दुःखभार से आक्रांत हो उठती हैं। जब उद्धव जी उन्हें ज्ञानोपदेश देने लगते हैं तब उनका क्रोध भ्रमर के माध्यम से श्रीकृष्ण और उद्धव के प्रति समान रूप से व्यक्त हुआ है। भ्रमर को लक्ष्य करके गोपियों ने श्रीकृष्ण को लंपट, चंचल, स्वार्थी, रस लुब्ध आदि कई रूपों में उपालंभित किया है। 'भ्रमर' शब्द अत्यंत प्राचीनकाल से साहित्य में रस लोलुप पुरुष के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है। गोपियां कहती हैं कि जितने काले हैं, वे सब के सब एक ही प्रकार की आदत वाले हैं, निष्ठुर और बेवफा हैं :-

"मधुकर ! यह कारे की जाति ।
ज्यों जल मीन, कमल पै अलि की,
त्यों नहिं इनकी प्रीति ।।"

प्रिय की निष्ठुरता को लेकर अनेक उपालंभ भ्रमरगीत काव्य में मिलते हैं।

कुब्जा के प्रति उपालंभ :

भ्रमर-गीत का उपालंभ रति भाव का उपालंभ है। जिसका सम्बन्ध दांपत्य-जीवन से है। कुब्जा की प्रणयगाथा को सुनकर गोपियां क्रोध एवं ईर्ष्या का अनुभव करने लगती हैं। कुब्जा के कारण असूया की बड़ी वक्रतापूर्ण व्यंजनाएं भ्रमरगीत काव्य में मिलती हैं। कुब्जा जैसी कुरूप दासी को अपने प्रियतम का कृपापात्र देखकर गोपियां

को अपना अनादर खटकता है। गोपियों ने कुब्जा के प्रति अनेक कटु से कटुतम भावों की अभिव्यंजना की है। कुब्जा के कूबड़ पर व्यंग्य करती हुई सूर की गोपियां कहती हैं :-

"ऊधौ यहै अचम्भौ आर, आपु कहां, ब्रजराज मनोहर, कहां कूबरी राढ़ ।।"[1]

नंददास की गोपियों ने भी कुब्जा को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है -

"लाए कहँ कहो मधुप, स्याम जोगी तुम चेला ।
कुब्जा तीरथ जाइ, करौ इन्द्रिन को मैला ।।"[2]

अन्य और

"गोकुल में जोरी, माई नाहि मुरारि ।
पदन त्रिभंगी आप हैं, करी त्रिभंगी नारि ।।
रूप गुन पीठि की ।।"[3]

उद्धव के प्रति उपालंभ :

श्रीकृष्ण के सखा ज्ञानी उद्धव गोपियों के विरह-ताप को दूर करने के लिये श्रीकृष्ण के आदेश से गोकुल आते हैं। कृष्ण के सखा होने के नाते गोपियों ने उनका बहुत आदर और सम्मान किया। गोपियों ने जब कृष्ण का सन्देश पूछा तब उद्धव जी ने अपना ज्ञानोपदेश आरंभ किया। गोपियों को यह जले पर नमक छिड़कने के समान लगता है। उद्धव जी की रूखी ज्ञानचर्चा उन्हें अच्छी नहीं लगती। इसी बीच में उड़ता हुआ एक भ्रमर आता है :-

"इहिं अन्तर मधुकर एक आयौ ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुन्दर सब्द सुनायौ ।
पूछन लागीं ताहि गोपिका, कुबिजा तोहि पठायौ ।।
कीधौं सूर स्याम सुन्दर कौं, कमैं संदेशौं लायौ ।"[4]

भारतीय संस्कृति में यह शिष्टाचार के अन्तर्गत माना जाता है कि अतिथि का अनादर-अपमान नहीं करना चाहिए। इसलिए गोपियों ने भ्रमर के माध्यम से

१- सूरसागर : पद-४२९०
२- पैंतरगीत : नन्ददास ५७
३- वही, पद ५९
४- सूरसागर : पद-४११५

उद्धव के प्रति मार्मिक व्यंग्य एवं उपालंभ का प्रयोग किया है। नंददास की गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जैसे साधुओं के संसर्ग में आकर अपने समस्त गुणों को खोकर कृष्ण निर्गुण बन गए हैं :-

"कोउ कहै अहो मधुप, साधु मधुवन के ऐसे।
और तहाँ के सिद्ध लोग, इनै हैं धौं कैसे।
औगुन गुण गहि लेत हैं, गुन कौ डारत मेटि।
मोहन निर्गुन क्यों न होई, तुम साधुन की भेंटि
गाठि की खोई है।"[1]

उद्धव को भोला-भाला आदमी ठहराकर सूर की गोपियाँ कहती हैं कि श्रीकृष्ण ने यह संदेशा इनके साथ भेजकर हँसी न की हो -

"सूर स्याम जब तुम्हे पठाए, तबे नेकहू मुस्काने।

उनकी बुद्धि की खिल्ली उड़ाती हुई वे कहती हैं कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। इसका उपचार करके फिर हमें उपदेश देने आना -

"जाय करो उपचार आपनो, हम जो कहत हैं जी की।"

प्रकृति के प्रति उपालंभ :

विरह से व्यथित और विकल गोपियाँ प्रकृति को भी कोसने आती हैं। वे जड़-चेतन तक का विवेक भूल जाती हैं। प्रियतम के वियोग से जब सारा ब्रज व्याकुल है, उस समय मधुवन का हरे-भरे रहकर झूमना गोपियों के लिए असह्य हो जाता है। वे मधुवन के प्रति उलाहना देते हुए कहती हैं -

मधुबन तुम क्यों रहत हरे।
बिरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।"[2]

१- भंवरगीत : नंददास-पद ५८

२- सूरसागर : पद ३८२८

उपालंभों के माध्यम से विरह की सूक्ष्म अभिव्यंजना के दर्शन भ्रमरगीत काव्य में होते हैं। भाव-प्रेरित वाग्वैदग्ध्यपूर्ण उपालंभ विनोद, चपलता, भोलापन और घनिष्ठता से युक्त हैं। -

गुजराती के भ्रमरगीत काव्य का भावपक्ष :

जैसा कि हम देख चुके हैं गुजराती साहित्य में भ्रमरगीतों की एक सुदीर्घ परंपरा के दर्शन होते हैं। इस परंपरा के कवियों ने प्रस्तुत काव्य स्वरूप का विविध कलात्मकताओं के साथ आलेखन किया है। इन कृतियों में विरह वात्सल्य द्वारा नंद-यशोदा का और विप्रलंभ शृंगार द्वारा गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम व्यक्त हुआ है। रस निष्पत्ति के लिये इन कवियों ने स्मरण, गुणानुकीर्तन, उपालंभ और व्यंग्य जैसी अनेक रीतियों का प्रयोग किया है।

विरह वात्सल्य :

अपने काव्य में नंद-यशोदा के वात्सल्यपूर्ण हृदय का उल्लेख किया है। सामान्यत: वस्तु संकलन ही इस प्रकार का होता है कि उद्धव श्रीकृष्ण का संदेश सर्वप्रथम नंद-यशोदा को देते हैं और बाद में गोपियों को। चतुर्भुज की `भ्रमरगीता` में उद्धव जब नंद-यशोदा के पास आते हैं तब यशोदा आर्त भरी वाणी में उनसे पूछती हैं कि उसे माधव और बलदेव कब मिलेंगे -

`कहीं ई वियलशे रे, मम माधव बलदेव ?`[१]

उक्त प्रश्न में माता की मिलनोत्कंठा दर्शनीय है। उसके पश्चात् एक अन्य प्रश्न द्वारा उसने स्वाभाविक ही पूछा है कि श्रीकृष्ण स्वयं क्यों नहीं आये -

`गोकुल सें न आण्युं`[२]

इस प्रश्न में सहज अधीरतापूर्ण शंका द्वारा माता के वात्सल्यपूर्ण हृदय को संक्षेप में ही वाणी प्रदान की गई है। उसके पश्चात् श्रीकृष्ण के गुणानुकीर्तन द्वारा सहज प्रेम अभिव्यक्त किया गया है। पूतना-वध, गोवर्धन पर्वत ऊंगली पर उठाना,

---

१- चतुर्भुज कृत `भ्रमरगीता` ७ ४२

२- वही, ,, ४३

आदि संस्मरणों के कारण रात छोटी प्रतीत होती है। यहां माता के अनन्य स्नेह को शब्दों में अभिव्यक्त करने के बजाय क्रिया में अभिव्यक्त कर कवि ने अपनी कलात्मकता का परिचय दिया है।

केशव ने अपने 'गोपी संदेश' में विरह वात्सल्य का निरूपण अपने ही ढंग से किया है। श्रीकृष्ण के कुशल समाचार लेकर आये हुए उद्धव को देखकर नन्द और यशोदा को अपार आनन्द होता है। नन्द जी कहते हैं कि हमें आज अमृत पान के समान आनन्द होता है -

"अमे आज अमी बहु पीधुं रे।"[१]

उनका अंत:करण आनंद से भर जाता है, मानो साक्षात् पुत्र मिल गया हो। माता यशोदा को भी सहज आनंद की अनुभूति होती है। आज का दिन उसके लिए धन्य है मानो उसे पुनर्जीवन प्राप्त हुआ हो :-

"आज दिवस धन्य अम तणो,
आज सजीवित जाण्य"[२]

अपने पुत्र के सखा के दर्शन द्वारा विरह व्यथिता माता को मानो नवचेतन प्राप्त हुआ है। मानस शास्त्र के अभ्यास के बिना भी कवि ने मानव मन की सूक्ष्म परख का परिचय दिया है। पुत्र का संदेश जिस दिन प्राप्त हुआ, उसको त्यौहार माननेवाली माता के लिए पुत्र का स्वयं उपस्थित होना कितना अनोखा एवं आनंदप्रद हो सकता है। कवि ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा अनुपम चित्र प्रस्तुत किया है। उद्धव का नन्द और यशोदा द्वारा किया गया स्वागत भी अन्ततोगत्वा उनके श्रीकृष्ण के प्रति अपार वात्सल्य की ही सहज अभिव्यक्ति है। पुत्र के गुणों का ऐसे अवसर पर पुनर्स्मरण होना अत्यंत स्वाभाविक है।

ब्रेहेदेव भी भ्रमरगीता एक विस्तृत रचना होने पर भी उसमें विरह-वात्सल्य का विशेष आलेखन प्राप्त नहीं होता। कवि नंद-यशोदा के साथ उद्धव के वार्तालाप प्रसंग का संक्षेप में ही समाहार कर देता है। अत: उसके इस वर्णन में मार्मिकता का

१- कवि केशवराम कृत 'गोपी सन्देश' ६
२- वही, ,, ,, ७

अभाव है और वात्सल्य रस की निष्पत्ति के लिए विशेष अवकाश नहीं रहता ।

भीम की 'रसिक गीता' में यशोदा के विरह वात्सल्य का वर्णन अत्यन्त अनुनय विनय पूर्ण और तीव्र व्यथा से युक्त है । माता की ममता के दर्शन उनके एक-एक शब्द में होते हैं । पूर्व प्रसंगों का स्मरण करते हुए उन्हें आत्मग्लानि का अनुभव होता है । बाल कृष्ण को ऊखल से बांधकर पीड़ा तु पहुंचाने का आज उन्हें अपार दु:ख है -

"एक वार दूध ढोलायुं रे

+ + +

त्यार में ऊखल बांध्यो रे ।"[१]

इस प्रकार विभिन्न प्रसंगों पर पुत्र को दंण्डित करने का उन्हें पश्चाताप है । अब कन्हैया लौटकर आये तो वह उन्हें नींद से जगाकर वन भेजने का विचार बिल्कुल छोड़ देती हैं -

"हवे वन मोकलुं नहि रे, मोहया जगाड़ी ने"[२]

विरह वात्सल्य के निरूपण में भीम का स्थान सर्वोपरि है । यशोदा के अन्तर्वेदनापूर्ण प्रायश्चित भरे वात्सल्य हृदय की अभिव्यक्ति में कवि को सफलता मिली है । हृदय-द्रावक गहरे रंगों को वह शब्दायमान कर सका है ।

कवि विश्वनाथ ने 'प्रेम पचीसी' में वात्सल्य का परस्पर निरूपण किया है । जहां नंद-यशोदा का श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह भाव व्यक्त हुआ है, वहां माता-पिता के प्रति श्रीकृष्ण के पूज्य भाव का भी वर्णन किया गया है । पुत्र के माता-पिता के प्रति भावों के निरूपण द्वारा कवि ने अपने काव्य में वैविध्य भरने का प्रयत्न किया है । ब्रजभूमि और माता यशोदा से दूर होकर श्रीकृष्ण को चैन नहीं है । गोकुल

१- भीमकृत 'रसिकगीता' २१

२- भीमकृत 'रसिकगीता' २२

में गायें चराने में उन्हें जो सुख-आनंद मिलता था वैकुंठ में भी दुर्लभ है, तो मथुरा में कैसे प्राप्त हो सकता है -

"शाकुं तो स्कंधे धरी, में गोकुल चारी गाय ।
ते वैभव वैकुंठे नथी, तो क्यांहांथी मथुरा-मांह्य ?"[1]

यशोदा की पुत्र विरह जनित दारुण अवस्था को लेकर श्रीकृष्ण स्वयं दुःख का अनुभव करते हैं । "मेरी माता अब किसका मुख देखकर जीवित रहती होगी" आदि भाव श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाकर कवि ने माता की असह्य व्यथा का सजीव चित्रण इन शब्दों में किया है -

"कोहोनुं मुख जोई ने जीवशे ?
कोहोने जोई ने ठरशे रे ?"[2]

इस काव्य की अन्य एक विशेषता भी द्रष्टव्य है । कवि ने श्रीकृष्ण की जननी देवकी के चरित्र को भी प्रस्तुत किया है । यशोदा को अपना पुत्र अधिक चाहता है, यह जानते हुए भी उसका वात्सल्य भाव कम नहीं होता । उसके हृदय का प्रेम समतल भूमि पर से गुजरता हुआ अजस्र रूप से प्रवाहित हुआ है । श्रीकृष्ण की उदास मनोदशा को लेकर वह परेशान है और अपने पति वसुदेव से ऐसा उपाय करने के लिए कहती है जिससे पुत्र सुखी हो । पुत्र के हित के लिए वह गोकुल से यशोदा को बुलाने के लिए कहती है :-

'प्रेमे पूछो पुत्र ने, ज्यम एहने सुख थाय ।'

\+ + +

तेडावो जसोदाजी ने, नंद तणी जे नार्यरे ।"[3]

अपने पुत्र के लिए वह सब कुछ करने के लिए तैयार है । अपने सुख से भी अधिक उसे अपने पुत्र की चिंता है जो अत्यंत सहज और स्वाभाविक है ।

श्रीकृष्ण के लिए नंद और यशोदा का प्रेम अविस्मरणीय है । आज भी श्याम का नाम रटते हुए नंद की उन्हें याद सताती है । क्षण मात्र के लिए भी नंद अपनी आंखों से पुत्र को ओझल नहीं होने देते थे -

---

१- प्रेम -पचीसी : विश्वनाथ जानी- पद २
२- वही, ,, पद २
३- वही, ,, पद ३

"निमेष अलगो थयो दृष्टि चूकी, शामजी समरतां जीभ सूकी ।।"[१]

श्रीकृष्ण माता यशोदा की विरह जन्य अवस्था को लेकर चिंता का अनुभव करते हैं । मेरी माता ~~ब~~ गोदोहन के समय मेरी प्रतीक्षा करती होगी । मुझे देखकर उसको अतीव प्रसन्नता होती थी । अब वह किसको पय-पान करायेगी -

"माहारी मावड़ी गावड़ी दोहोती, दश दशा मुंझे रे जोनी ;
मुखडुं जोई ने मोहोती, को हेते पय पाशे ?"[२]

कवि ने माता यशोदा के विरह वात्सल्य को तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान की है । बाल कृष्ण के सुन्दर मुख पर सारे संसार की शोभा न्योछावर है । उसे अपनी गोद में बैठाने की उसकी तीव्र इच्छा है । बालक चाहे जितना बड़ा हो जाय परन्तु माता की दृष्टि में वह सदा छोटा, नादान और प्यार करने योग्य होता है । वह जन्म-जन्मांतर नन्द कुंवर की धाय बनना पसंद करती है :-

"हुं भवोभव तारी धावरे, आण्य कुंअर"[३]

०००

कवि मानव मन का ज्ञाता है । माता यशोदा के वात्सल्य को मार्मिक रूप में व्यक्त कर कवि ने करुणापूर्ण वातावरण उपस्थित किया है । यह कवि की महान् सिद्धि है ।

प्रेमानन्द ने अपनी 'भ्रमरगीता' में इस विरह वात्सल्य को अपने ही ढंग से व्यक्त किया है । उद्धव का स्वागत करने के पश्चात् पुत्र-दर्शन के लिए लालायित माँ ऐसे अनेक प्रश्न पूछती है । इन प्रश्नों में उत्कट जिज्ञासा और हृदयस्थ भावनाओं के प्रचण्ड आवेग के दर्शन होते हैं । पुत्र वात्सल्य माता ने अपना हृदय निचोड़ डाला है । व्यथा से उसका हृदय पर उठा है । पूर्वजन्म में उसने ऐसे क्या अपराध किये कि जिससे पुत्र विरह का दुःख प्राप्त हुआ -

"मैं शां शां पूर्वे कीधां पाप ?"[४]

१- प्रेम -पचीसी : विश्वनाथ जानी, पद ८
२- प्रेम-पचीसी : ,, पद ६
३- वही, : ,, पद २४
४- भ्रमरगीता : प्रेमानंद कड़वुं (पद) १२६

उत्तरोत्तर भाव परिवर्तन द्वारा कवि ने मातृ-हृदय का अच्छा परिचय दिया है। उसके हृदय की मार्मिक व्यथा, विवशता और व्याकुलता पाषाण-हृदय को भी गला देने की क्षमता रखती है।

कवि प्रेमानन्द में रसाभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता है। अनेक व्यभिचारी भावों का उसने प्रयोग किया है। 'भ्रमर पचीसी' में भी कवि ने यशोदा के वात्सल्य भाव का सहज चित्रण किया है। जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर सूना है, उसी प्रकार पुत्र के अभाव में माता का हृदय शून्यता का अनुभव करता है -

"पुत्र बिना हुं मावड़ी, ज्यम प्राण बिना शरीर।"[1]

यहां विरह व्यथा की तीव्रता के सहज दर्शन होते हैं। कुछ पंक्तियों में तो यह विरह व्यथा हृदय विदारक बन जाती है। माता की एक मात्र इच्छा कृष्ण दर्शन की है -

"जो एक वार आवे कृष्ण जी तो, पेट भरी ने पाऊं रे।"[2]

'भ्रमरगीता' में प्रेमानन्द विस्तार चाहता है जब कि 'भ्रमरपचीसी' में लाघव चाहता है। रस निष्पत्ति की दृष्टि से दोनों रचनाएं सफल एवं सुन्दर हैं। इन रचनाओं में कवि द्वारा प्रयुक्त उपादानों का वैविध्य उसकी तेजस्वी प्रतिभा, कल्पना शक्ति तथा मानव हृदय की परख का परिचायक है।

कवि 'सुन्दर' अपनी 'भ्रमरगीता' में नन्द यशोदा के विरह वात्सल्य को स्थान देता है, किन्तु यह वर्णन अत्यन्त ही अल्प कहा जा सकता है। बार-बार एक ही प्रश्न की पुनरावृत्ति -"शुं नहीं आवे हवे कृष्ण जी ?"[3] श्रीकृष्ण के प्रति वत्सि० अप्रतिम वात्सल्य और मिलनोत्सुक्य प्रकट करता है। 'उद्धव संदेश' का रचयिता रघुनाथ भी यशोदा के वात्सल्य का मात्र उद्धव की उक्तियों में ही उल्लेख करता है। अत: पूर्णतया रस निरूपण नहीं हो पाता। 'गोविन्दराम' ने भ्रमरगीता के पदों में यशोदा के वात्सल्य को भलीभांति अंकित किया है। देवरूप श्रीकृष्ण का पालन-पोषण

१- भ्रमर-पचीसी - प्रेमानन्द पद -६

२- वही, पद ८

३- भ्रमरगीता : सुंदरसुत कहुं -पद-११

पुत्र के रूप में किया, उसका उसे गहरा दु:ख है। इस पर भी जो स्नेह एक बार हुआ वह अब समाप्त नहीं हो सकता। इसलिए वह एक बार आने के लिए अनुरोध किये बिना नहीं रह सकती -

"उद्धव। कहेजो कृष्ण ने रे, आवे एक वार।"[१]

यशोदा के संस्मरणों में उसके हृदय की तीव्रता के दर्शन होते हैं। साथ ही उसके पश्चाताप की अभिव्यक्ति सफलतापूर्वक हुई है।

कवि दयाराम की 'प्रेमरसगीता' में उद्धव के ज्ञानोपदेश का प्रतिकार करते हुए यशोदा ने अपने अविचल पुत्र प्रेम को व्यक्त किया है। उनका श्रीकृष्ण के परब्रह्म स्वरूप में विश्वास नहीं। वे तो अपने आपको उनकी माता ही समझती हैं -

"परमेश्वर एने अमो केम करी लहीएजी"[२]

व्यभिचारी भावों की विभिन्न अवस्थाएं :

रसोद्र के लिए गुणकथन, स्मरण, व्यंग्योक्ति, अभिलाषा, चिन्ता, उद्वेग आदि उपादानों का प्रयोग किया गया है। सामान्यत: जिन-जिन भ्रमरगीतों में विरह वात्सल्य का निरूपण हुआ है उनमें श्रीकृष्ण का स्मरण एवं गुणानुकीर्तन किसी न किसी प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही साथ कृष्ण मिलन के लिए अपार उत्सुकता दिखाई गई है। चतुर्भुज की यशोदा श्रीकृष्ण के पराक्रमों का स्मरण करती है।[३] विरह वात्सल्य की निष्पत्ति के हेतु विश्वनाथ द्वारा किया गया गुणानुकीर्तन सबसे ज्यादा आकर्षक अलौकिक एवं आस्वाद्य है। यशोदा का विविध स्मरणों द्वारा विलाप एवं तीव्र पश्चाताप वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है। यशोदा की अभिलाषापूर्ण दशा का कवि भीम ने सुन्दर वर्णन किया है। अपना पुत्र परब्रह्मरूप है, ऐसा जानते हुए भी यशोदा की ममता एवं मिलन की प्रबल इच्छा दबती नहीं।[४] विश्वनाथ की यशोदा को भी ऐसी ही अभिलाषा है।

१- भ्रमरगीत नुं पद : गोविंदराम १७

२- प्रेमरसगीता : दयाराम पद ७

३- रसिक गीता : भीम १९ से २६

४- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी, पद-१३

वह चाहती है कि अपना प्यारा पुत्र गोकुल आकर उसे 'मां' कहकर पुकारे -

"एक वार गोकुलमां हे आवे 'माड़ी' कहीने मंने रे बोलावे"[१]

गोविन्दराम ने तो यशोदा की दर्शनाभिलाषा द्वारा मर्मस्पर्शी करुणा उत्पन्न की है।[२] चिन्ता के भाव को तीव्रता प्रदान करने का श्रेय विश्वनाथ को है। आकुल-व्याकुल होकर आतुरता से प्रश्न करती यशोदा का चित्रण इस कवि ने किया है :-

"राम कृष्ण कूंवर बेहुं काला,[३]

वारु रे जी ? को हा वाहाला।"

श्रीकृष्ण गोकुल छोड़कर मथुरा पहुंचे तो सही परन्तु मन की उद्विग्नता किसी भी प्रकार कम नहीं होती। उनकी इस उद्विग्नतापूर्ण मन:स्थिति का कवि विश्वनाथ ने काव्यारंभ में आलेखन किया है।[४] विभिन्न व्यभिचारी भावों की सहायता से कवि कृष्ण की उद्विग्न अवस्था को कलात्मक रूप दे सका है। माता यशोदा के विलाप द्वारा मरणासन्न अवस्था का परिचय दिया है -

"माहारा आता। तूं आधार रे, वार नथी पीड़ -तणां"[५]

माता यशोदा की दीनावस्था पुत्र विरह में जल बिना मछली के समान बन जाती है। ऐसा लगता है कि यह कवि विप्रलंभ शृंगार के निरूपण में संभव ऐसी सभी अवस्थाओं और व्यभिचारी भावों को विरह वात्सल्य में व्यक्त करने की संभावना की ओर संकेत कर रहा हो।

प्रेमानंद ने अपनी 'भ्रमर पचीसी' में विरह वात्सल्य की निष्पत्ति के लिए व्यंग्य का प्रयोग किया है। यहां कवि ने यशोदा का प्रकोप देवकी के प्रति व्यक्त किया है -

---

१- गोविन्दराम नुं पद : १८

२- वही, पद : २७

३- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी -पद-१३

४- वही, ,, पद-२

५- वही, ,, पद २४

"भाई पोतानो मरावीशो, जेणे उड़ाव्यां बहु गाउ ;
प्रेमानन्द -प्रभु नी माताए, अमोने जीवतां मूक्यां ते पाउ ।"[1]

गुजराती भ्रमरगीत काव्य में विरह वात्सल्य के स्वरूप -विश्लेषण के उपरान्त उक्त काव्य में विप्रलंभ शृंगार की स्थिति पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा ।

विप्रलंभ शृंगार : विभिन्न अवस्थाएं :

अनेक विद्वानों ने शृंगार को रसराज की संज्ञा से विभूषित किया है । प्रेम-लक्षणा भक्ति में शृंगार स्वाभाविक अनिवार्यता रखता है । विप्रलंभ शृंगार संयोग शृंगार की अपेक्षा अपनी तीव्रता के कारण अधिक आकर्षक होता है । विप्रलंभ शृंगार रस की निष्पत्ति द्वारा ही प्रेम लक्षणा भक्ति का परिचय ही भ्रमरगीतों का मुख्य आशय होता है । रस निष्पत्ति के हेतु कवियों ने विरहिणी गोपियों की गुणकथन अभिलाषा, स्मरण, उद्वेग तथा चिन्ता जैसी दशाओं का आश्रय ग्रहण किया है ।

ब्रेहेदेव की गोपियां श्रीकृष्ण के कीर्तन में रत रहती हैं । प्रियतम के गुणों का गान और श्रवण उन्हें अत्यधिक प्रिय है -

"गुण संभली गिहिलां थशुं "[2]

श्रीकृष्ण की क्रीड़ाओं एवं लीलाओं के स्मरणों में विभोर गोपियां उनके पराक्रमों की याद आते ही पुन: उनके गुणगान में लीन हो जाती हैं । नन्दनन्दन का चरित्र अपार है । इनके पराक्रमों की गाथा अवर्णनीय है । प्रियतम की प्रशंसा गोपियों ने अनेक प्रकार से की है । इन्होंने वैकुण्ठ दिखाया, कोटि-दृष्टि दी, मिट्टी के बहाने मुख से चौदह लोक दिखाया, आदि का लंबा-चौड़ा वर्णन किया गया है -

"देखाडीयु वैकुंठ अह्यनि, दया कीधी अति घनी ।
मृत्तिका -मिशि वदन-मांहि, चौद लोक प्रकाशनु ।।"[3]

१- भ्रमर पचीसी : प्रेमानंद-पद ६

२- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव कडवुं (पद) ३२

३- वही, ,, पद-३५

भीम के गुणानुकीर्तन का ढंग अनोखा है। ब्रज में लीला करने वाले और मथुरा में वराकृप दिखाने वाले श्रीकृष्ण की भिन्नता को ब्रज वनिताओं के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता ऐसी उनकी मान्यता है -

"तमे जुओ कंस मार्यो रे, ते तो 'केशव' कह्यो ;
उद्धव जी। वेणु वाजो रे, 'विट्ठलो' मन वस्यो ।।"[१]

विश्वनाथ श्रीकृष्ण के मुख से यशोदा और गोपियों का गुणगान कराता है। यह गुणगान अतिशयोक्तिपूर्ण है :-

"एक जीभे शा शा रे भणु ?
गोपिका ना गुण रे गणुं "[२]

कवि सुन्दर ने भी श्रीकृष्ण के मुख से यशोदा गोपी एवं गोप सखा के गौरव का गान किया है। रघुनाथ की गोपियों को श्रीकृष्ण का स्मरण हमेशा परेशान करता है वे बालकृष्ण की अनेक क्रीड़ाओं का स्मरण करती हैं। कल्याण कृत 'ओधव जी नी गरबी' में गुणानुकीर्तन का अवकाश नहीं है। परन्तु श्रीकृष्ण के अभाव में गोपियां जिस व्यथा का अनुभव करती हैं, उसमें उनकी महिमा का अनुभव अवश्य होता है। श्रीकृष्ण के बिना बेहाल गोपियों का वर्णन कलात्मक है -

"देहलड़ी दुर्बल थई रे नाथ बिना रे, काया थई गई रे कंई बेहाल ।
जुमनां जल भरवाने जइये छिये रे, तीरे न मले नंदजी नो लाल ।।"[३]

गोविन्दराम ने स्मरण एवं गुणानुकीर्तन दोनों का आलेखन किया है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण का गुणगान अधिकांश प्रमरगीताओं का सामान्य लक्षण बन गया है, उसी प्रकार स्मरण भी सामान्य लक्षण है। स्मरण दशा विप्रलंभ शृंगार के वर्णन में अधिक सहायक बनती है। नरसिंह के 'गोपी सन्देश' में जिसके प्रति अपार प्रेम है ऐसे श्रीकृष्ण का गोपियों को बार-बार स्मरण होता है। उन्हें रास,क्रीड़ा की याद आती है। मधुर मिलन के दिनों की विस्मृति असंभव है -

---

१- रसिकगीता : भीम : पद- ७८

२- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी, पद १२

३- 'ओधव जी नी गरबी : कवि कल्याण-११

"सुखना दाड़ा रे, ओधव अमने मांभरे रे,
ए सुख ना जाणे परिब्रह्म ।"[१]

प्रेमियों के जीवन में कतिपय प्रसंग अमर याद छोड़ जाते हैं । मधुर मिलन के प्रसंग गोपियों की कल्पना में साकार रूप लेने लगते हैं ।

कवि ब्रेहेदेव ने स्मरण दशा की उत्कटता का निर्वाह करते हुए विरहिणियों की दारुण दशा का सजीव चित्रण किया है । कवि ने संभोग के प्रसंगों का वर्णन तीव्रता के साथ चित्रित किया है । गोपियां किस प्रकार कामवश होकर विपरीत आभरण धारण कर उन्मत्तता की अवस्था में श्रीकृष्ण से मिलने के लिए चली हैं उसका सजीव चित्र प्रस्तुत कर कवि ने गोपी हृदय की व्यथा का परिचय दिया है -

"विपरीत आभरण अंग्य पिहिरां, काम-वश थै कांम्यनी ।
उन्मत्ती पिरि सर्व नीपरी, ते कृष्ण गामी सुन्दरी ।।"[२]

शरद की रात्रि में श्रीकृष्ण के साथ रचाये रास की बराबर स्मृति बनी हुई है । रमनाद सुनते ही दौड़कर आई हुई गोपियों के साथ श्रीकृष्ण बोले नहीं । तब वे दीन स्वर में अनुनय विनय करने लगीं । उनके दीन वचन सुनकर श्रीकृष्ण का द्रवित होना स्वाभाविक है. -

"अमारां दीन वचन रे, सुनी हरि हरखिया ।
अमने क्षीने बोल्या रे, त्यारे हरि निरखिया ।।"[३]

विश्वनाथ की 'प्रेम-पचीसी' में गोपियां आलंबन विभाव हैं । गोपियों का स्मरण श्रीकृष्ण के लिए तीव्र वेदनायुक्त है । व्रज वनिताओं का वेणी गूंथने का प्रसंग याद कर विरह व्यथा से उनका हृदय भर जाता है. -

"वेणी व्रज-वामा तणी, ते बेला क्यम वीसरे ।"[४]

प्रेमानन्द श्रीकृष्ण को समस्त गोकुल का स्मरण कराते हैं । गोपियों के अभाव में उन्हें मथुरा का स्वादिष्ट भोजन नहीं भाता, उन्हें तो ब्रजनारी के हाथों की छाछ अच्छी लगती है । मथुरा के गज एवं अश्व अप्रिय लगते हैं, उन्हें तो गोकुल की गायें ही पसन्द हैं ।-

---

१- गोपी सन्देश : नरसिंह मेहता, पद ४
२- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव कड़वुं ३२
३- रसिक गीता : भीम ८६
४- प्रेम पचीसी : विश्वनाथ जानी-पद १३

"देवकीनुं खटरस अन्न भावे नहीं, वाहाली मुने व्रजनारी नी छाश हो ।
गज,रथ अश्व हो, मुने अलखामणा,गमे मुने गोकुलियानी गाय,हो ।।"[१]

'प्रेमानन्द' ने 'भ्रमर पचीसी' में राधा के पात्र को प्रस्तुत किया है। पूर्व क्रीड़ाओं के स्मरण मात्र से गहरी व्यथा का अनुभव होता है। प्रियतम के प्रति अति विश्वास को लेकर जो विपरीत परिणाम आया वह राधा के लिए असह्य हो उठा है। मिलन के क्षणों की मधुर स्मृतियों को लेकर राधा का हृदय भीतर ही भीतर जल रहा है -

कुटुंब सघणुं मेरी कीधुं, परिशुं माया लागी रे ।
लोभी लोक थई ने बेठा, परहीणां सभागी रे ।

\+ \+ \+

शरद समय नुं सुख संभारी,मनमां रहीए दाझी रे ।"[२]

पुरुषोत्तम ने किसी भी प्रसंग का अधिक विस्तार नहीं किया । उसकी गोपियां श्रीकृष्ण की बांकी दृष्टि को याद कर व्यथा का अनुभव करती हैं -

"वाले प्रीत्य करी,लीधां अटकामां मन्न ।"[३]

कवि सुन्दर सुत ने आरंभ में ही श्रीकृष्ण के बचपन के संस्मरणों का आलेखन किया है। ब्रजवासियों के सान्निध्य में व्यतीत जीवन की मधुर स्मृतियों से उनका हृदय भर जाता है। उद्धव के सामने अपनी भावनाओं को व्यक्त करना उनके लिए कठिन हो गया है -

"सांभल ओधव । माहारा भ्रातजी,व्रजवासीनी शी कहुं वातजी- ?
विस्तारतां ने वीरा । सांसो थाय थी-गद् गद् कंठे लांइसन कहेवाशजी ।"[४]

यहां जिस तीव्रता के साथ श्रीकृष्ण की विरहव्यथा का आलेखन हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है ।

१- भ्रमरगीता : प्रेमानन्द कडवुं १२४

२- भ्रमर-पचीसी : प्रेमानन्द-पद-१९

३- भ्रमरगीत : पुरुषोत्तम -पद-५

४- दशम स्कन्ध : अध्याय ४६ : सुन्दर सुत -पद-कडवुं-५

कल्याण ने श्रीकृष्ण के खिलौने, पीतांबर तथा पद-चिन्हों के दर्शन द्वारा गोपियों के विरह को अधिक तीव्र रूप में चित्रित किया है। उन्हें प्रियतम की याद बार-बार सताती है। दही बिलोते समय श्रीकृष्ण की स्मृति में निमग्न गोपिका का चित्र हृदय द्रावक बन पड़ा है -

"महीडुं घूमुं ने माखण उतरे रे, आंई जाणूं आवे आवे कानान।
हवे रम जानूं जे चेन चडी जशे रे, देहीनी नही रेहे सूध ने पेन ।।"[१]

कवि गोविन्द भी गोपियों को भी अपने साथ खेलने और रास दवच रचाने वाले श्रीकृष्ण की याद अत्यधिक सताती है। कवि को गोपी हृदय की दारुण दशा के चित्रण में विशेष सफलता नहीं मिली है। दही, मक्खन खाने के लिए श्रीकृष्ण का आना और गोपी द्वारा उन्हें पकड़ रखने का चित्र इन शब्दों में अंकित हुआ है -

"मंदिर महारे आवता रे, मही माखण खाता ;
अमे फाली राखता रे, न देता जाता ।।

अभिलाषा दशा का वर्णन कतिपय कवियों द्वारा हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। विप्रलंभ की दशा में हताश होने पर भी प्रतिपल प्रियतम के आगमन की अभिलाषा बनी रहती है। अभिलाषा की पूर्ति न होने पर ग्लानि होती है और विकलता के कारण विप्रलंभ गहरा और तीव्र बनता है। नरसिंह की गोपियां प्रियतम की प्रतीक्षा को लेकर आकुल-व्याकुल हैं। उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया है। उनकी आंखों में से निरंतर अश्रु वर्षा होती रहती है। वे बार-बार घर में से बाहर निकलकर आंगन में से प्रियतम के आने का पथ निहारती रहती हैं। जब से प्रियतम मथुरा गये हैं तब से उनके शरीर विरहाग्नि में जल रहे हैं -

"घरमां पसुं ने आवुं आंगने, चढ़ीने जोऊं हुं मलीएजी।
अन्ननी बाधा ते लीधी छे आकरी ; अमे लमणे ते आंसू ढालीएजी।
जे रे दाहड़ाना गया नाथ, अमे दिन-दिन देहड़ी गालीए जी ।।"[२]

१- भ्रमरगीतानुं पद :गोविन्दराम ३०

२- गोपीसन्देश : नरसिंह मेहता पद ६

प्रियगमन के साथ विरहताप में शरीर को जला देनेवाली प्रेम दीवानी व्रजनारियां मानो शनैः शनैः मरणोन्मुख अवस्था को प्राप्त करती जा रही हैं।

गोपियों की श्रीकृष्ण के साथ रहने की तीव्र अभिलाषा का वेदना और विकलतापूर्ण चित्र कवि चतुर्भुज ने प्रस्तुत किया है। वे अनेक प्रकार से प्रियतम के रथ को रोकने का प्रयत्न करती हैं -

"आम्यनी -कृष्ण पूठिई जाई, चीर ऊंटा ने रेहड़ा घसाई
व्यलवलई विहणी बांहि साहि, वाहला। विदेसि कां मुकी जाई।"[1]

कवि केशवराम ने मिलनातुर गोपियों के मुख से व्यंग्योक्तियों का प्रयोग किया है। विरहाग्नि में उनके शरीर जल रहे हैं। बचपन की प्रीति के विस्मरण के लिए वे प्रियतम से शिकायत करती हैं -

"विरहानल देहड़ी दाझे रे, वण-औषध व्याधि न भाजे रे।
तजी बालपणानी प्रीत रे, एह कोण तमारी रीत रे।"[2]

गोपियां कभी कुब्जा के प्रेम में अनुरक्त प्रियतम के प्रति तो कभी उन्हें पोहपाश में बांधनेवाली कुब्जा के प्रति रोष प्रकट करती हैं। जब उन्हें पूर्व स्मृतियों का स्मरण होता है तब वे अपने रोष को आंसू द्वारा धो डालती हैं। प्रियतम के आने की अनन्त अभिलाषा हृदय में संजोये उनके प्राणपक्षी हृदय रूपी नीड़ में पड़े हैं।

ब्रेहेदेव ने नगर की नारियों के प्रति गोपियों के ईर्ष्याभाव का चित्रण किया है। कुब्जा के प्रति भी उनका रोष अत्यंत स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है -

"नगरमांहा जईने एणि, असंभव कीधुं घणुं।
पेली चेलीना चंदन माटई, पामीयु कमलापणुं।"[3]

१- भ्रमरगीता : चतुर्भुज ११

२- गोपी सन्देश : केशवराम २८

३- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव कडवुं ७

भीम की गोपिकाओं में अधीरता और अभिलाषा के दर्शन पद-पद पर होते हैं। उद्धव को देखते ही वे पूछने लगती हैं कि हमारे लिए कृष्ण ने कुछ कहा है -

"अमने कृष्णे काहाव्युं रे, लख्युं कांई लावीआ ?"[1]

कृष्ण के बिना गोपियों का जीना दूभर हो गया है। विश्वनाथ की गोपियां उद्धव से कहती हैं कि भले ही उन्होंने योग का संदेश भेजा हो, वे हमारी सुध-बुध लेने के लिए गोकुल आयेंगे -

"जोगज्ञेरां अंग सपडां, भोलां ने भणाविये।
पुरुषोत्तम। आ पीड्य जोवा, वेगे गोकुल आविये।"[2]

प्रेमानंद की गोपियां श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अत्यधिक व्यग्र हैं। वे मथुरा जाना चाहती हैं किन्तु प्रभु की आज्ञा के अभाव में ~~[illegible]~~ अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव करती हैं :-

"मनमोहन ने मळवा कारण, व्याकुल थई सर्वे गोपी।
मथुरा मां केमे करी जईए, आज्ञा प्रभु नी लोपी ?"[3]

पुरुषोत्तम की भ्रमरगीता में गोपियों की कृष्ण मिलन की अभिलाषा यत्र-तत्र व्यक्त हुई है किन्तु उसमें तीव्रता का अभाव है। जबकि कवि सुन्दर की गोपियों में दर्शनाभिलाषा अति प्रबल है। जल के बिना मछली, और चन्द्रमा के बिना रात्रि की जो स्थिति होती है वही गोपियों की है। प्रियतम के अभाव में उनके जीवन में शून्यता छाई हुई है। कवि ने इन विरहिणियों की व्यथा का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है :-

"जल विना जेहेवी माछली, चन्द्र विना गेम रात रे।"

\+ \+ \+

हंस विना सरोवर शोभीए, जेम मणि विना मुक्ता हार रे।
दीपक विना जेम मोटां मंदिर, भामिनी विण भरथार रे।।"[4]

१- रसिकगीता : भीम-३२

२- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी ६००

३- भ्रमरगीता : प्रेमानन्द कड़वुं १२४

४- वही, सुन्दरपुत कड़वुं ४१

रघुनाथ का तो पूरा काव्य गोपियों की अभिलाषा के रूप में है। गोपियों ने आर्त्त मिश्र की मधुर अभिलाषा के साथ अपने प्रियतम को पुकारा है :-

"मलवा आवो मनमां राखी मेहेर जो"[1]

कवि कल्याण ने गोपियों की मूर्छावस्था तक का चित्रण किया है। प्रियतम के अभाव में उन्हें सारा संसार सूना प्रतीत होता है। उनकी देह दुर्बल हो गई है और जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है :-

"देहलड़ी दुर्बल थई रे नाथ विनारे, काया थई गई रे कंई बेहाल।

+ + +

शुं करीये सरवे संसार ने ? न मले प्राण-जीवन जी पास ।।"[2]

गोपियों की चिंतित मनोदशा का निरूपण अधिकांश भ्रमरगीताओं में मिलता है। चतुर्भुज की गोपियां सहज आशंका के साथ उद्धव जी से पूछती हैं कि श्रीकृष्ण क्यों नहीं आये :-

"मथुरा-थिका तम्मे आवीया, लावीया कांई संदेश ?
कां न पधार्या श्रीकृष्ण जी, हरि रह्या सिंई लवलेश ?

केशव के 'गोपी सन्देश' में कुब्जा के संग में पड़े प्रियतम को लेकर चिंता और उद्वेग का अनुभव करती गोपियों के हृदय की अभिव्यक्ति हुई है।[3] ब्रेह्मेव की गोपियां काम पीड़ा से संतप्त हैं। यौवन को व्यर्थ बीतते हुए देखकर व्यथा का अनुभव करती हैं :-

"यौवन जाई रे नाथ। न म्यलि, ते ह्मो न सकूं समी।"[4]

प्रेमानन्द की गोपियां जब से प्रियतम मथुरा गये हैं उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा में पथ निहारती खड़ी हैं। कुब्जा के सुख की कल्पना मात्र से उनकी आंखों में आंसू भर आते हैं :-

---

१- उद्धव-सन्देश : रघुनाथदास गरबीड

२- ओधवजीनी गरबी : कल्याण ११,१८

३- भ्रमरगीता : चतुर्भुज ५८

४- [illegible] भ्रमरगीता : ब्रेह्मेव कड़वुं ३८

"महीयारी मधुपुर ने मारग, अमी पंथ निहाले ।
कुब्जा शाक्यनुं सुख संभारी, नयणे आंसु डाले ।"[१]

उपालंभ एवं व्यंग्य :

" भ्रमर के माध्यम से उपालंभों की परंपरा भ्रमरगीताओं की अपनी स्वतंत्र विशेषता है । इस उपालंभ परंपरा के कारण भ्रमरगीताओं में अनोखा आकर्षण मिलता है । इस काव्य परंपरा के मूल में ही उपालंभ तत्व निहित है । यद्यपि सभी कवि 'भ्रमर' के माध्यम से गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति उपालंभों का आयोजन नहीं करते । कतिपय कवियों ने भ्रमर का उल्लेख किये बिना सीधे ही उपालंभों का उपक्रम रखा है । मीठे, तीव्र व्यंग्य की यह प्रक्रिया गोपियों के प्रेम की अभिव्यक्ति का ही मूल कारण है । भागवत में जो रसलोलुप भ्रमर की कल्पना है, उसी का आधार इन कवियों ने लिया है और अपने ढंग से प्रसंग का विस्तार किया है । इस प्रसंग के आलेखन में कृष्ण का व्यवहार रस भ्रमर के समान ही निष्ठुर चित्रित किया गया है । वर्ण में दोनों का साम्य है । इस दृष्टि से भ्रमर का प्रतीक आस्वाद्य बना है । कुछ भ्रमरगीताओं में मात्र कृष्ण के प्रति ही नहीं किन्तु उद्धव के प्रति भी भ्रमर के माध्यम से फटकार सुनाई गई है । इस परंपरानुगत उपालंभत्व एवं व्यंग्यात्व को गुजराती कवियों ने किस प्रकार अपने अपने ढंग से व्यक्त किया है यह द्रष्टव्य है :-

प्रथम चतुर्भुज की भ्रमरगीता के व्यंग्यत्व को देखा जाय । हरि को गोपियों से अब अधिक कोई प्रिय नहीं है ।[२] ऐसा उद्धव के कहने पर भी उन्हें संतोष नहीं होता । आने का वचन देकर गये हुए श्रीकृष्ण को वचन का पालन करना ही चाहिए था । वचन न निभाने पर गोपियों को बुरा लगना अत्यंत स्वाभाविक है । उपेक्षिता गोपियों का प्रणय प्रकोप नागरी नारियों के प्रति प्रकट हुआ है । उसमें ईर्ष्या का भी पुट मिलता है । वे रोष में आकर नागरी नारियों को धूर्त तक कह डालती हैं :-

---

१- भ्रमरगीता (दशम स्कंध) : प्रेमानन्द कडवुं १२४

२- तहम सरखुं वहालु कोई नंही । भ्रमरगीता : चतुर्भुज ५६

"नगरनी नारी धूतारी रे, रमती हुसि विपरीत।
हरि हवे शुं करि आंहां आवि ? नीरस नारी अम्हो थई अ-भावी ।।"[१]

गोपियों के उपालंभों में ब्रेहेदेव ने मौलिकता का निर्वाह किया है। ज्ञानोपदेशक उद्धव का दिमाग ठिकाने लाने के लिए गोपियाँ भ्रमर से कहती हैं कि तू हम से दूर रह और जहां से आया है वहीं चला जा -

"मधुकर ने मिषांतरे उद्धव ने, कहई छि व्रज -कंगना ।
स्पूं सुद्ध केवा आवियऊ? जा दुष्ट, दूत श्री रंगना ।।"

गोपियों ने श्याम रंग को लेकर विविध प्रकार से व्यंग्य किया है। वे अपने अनुभव के आधार पर सबको सतर्क कर देती हैं कि श्यामरंग के लोग विषयुक्त होते हैं -

"सांमलुडांनि रखे को वीससि सांमलड़ा -माहि सिहिजे विष वसी ।
शाम भोयंगम पय पातां डसि ।"[२]

भीम की गोपियाँ ज्ञानी उद्धव को खूब फटकार सुनाती हैं। वे उनके मुख से ज्ञान की बातें सुनना नहीं चाहतीं। उनके अभिप्राय में उद्धव ज्ञान का उपदेश देने आये हैं उसमें उनका कसूर नहीं है किन्तु यह तो काले कृष्ण के कुसंग का ही परिणाम है -

"तमारो वांक नहि रे, उद्धव जी । सांभळो ;
कुसंग संग मळो रे, थाये रस कर मळो ।
जेवा रंग पासे होय रे, तेवा रंग चोळवां ।।"[३]

कवि विश्वनाथ ने गोपी मुख से कहलवाया है कि मथुरा की नागरी नारियों के साथ अहिरिनों की क्या तुलना हो सकती है -

---

१- भ्रमरगीता : चतुर्भुज ६०-६१

२- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव कड़वुं १०

३- रसिक गीता : भीम ६१-६२

"मथुरानी महिलानी तोले, क्यम आवे भरु आड़ी ।"[१]

प्रेमानन्द की 'भ्रमर पचीसी' में प्रयुक्त गोपियों की मार्मिक वाणी भी आस्वाद्य है । श्रीकृष्ण के जन्मदाता एवं पालक माता-पिता अलग थे, इस तथ्य को लेकर कवि ने अनेक व्यंग्योक्तियों का प्रयोग किया है । श्रीकृष्ण के परिवर्तनशील स्वभाव को लेकर गोपियां कहती हैं जो अपने माता-पिता ही बदल दे वह हमें छोड़ दे उसमें क्या -

"जेणे बीजां कीधां मा बाप, अमारुं कोण गजुं ?"

\+ + +

आज मथुरां मांहे माहुआर, अहीआं हता चोरवा ।"[२]

उपालंभों को तीव्र करते हुए आगे कहा है कि श्रीकृष्ण को मथुरा प्रवेश के साथ ही कन्या प्राप्त हुई और उन्हें हल्दी लगाने की आवश्यकता नहीं हुई । काले कृष्ण और कुबड़ी कुब्जा को लेकर मार्मिक व्यंग्य किया गया है -

" वर कालो ने कन्या खोड़ी, लोक हसाव्या लीटी रे ।"[३]

प्रेमानंद की प्रस्तुत कृति में सबसे बड़ा आकर्षण चन्द्रभागा और राधा द्वारा भ्रमर के प्रति किये गये उपालंभों में है । काले रंग के कपटी स्वभाव के अनेक दृष्टांत प्रस्तुत कर उपालंभ को अधिक उत्कट बनाया है । चन्द्रभागा का रोष अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त हुआ है । वह कहती है कि काले केशों का तेल से सिंचन करने पर भी अन्त में वे सफेद हो जाते हैं । इस प्रकार अनेक उदाहरणों द्वारा श्रीकृष्ण के कपटी स्वभाव का आलेखन किया है -

"जेटला काला तेटला अपटी, विश्वास कोनो नव करीजे रे ।
काला साथनी संगत करतां, कोई एक दहाड़ो मरीजे रे ।।

\+ + +

१- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी-पद १७

२- भ्रमर -पचीसी : प्रेमानंद -पद १३

३- वही, पद-१६

जो तेले काला केश पोषीये, तो अंते धोळा भाए रे ।
पंथी ते को कुशल न आवे, जो काळी राते जाए रे ।।"[१]

पुरुषोत्तम की गोपियों के उपालंभ पराजित, निराश, खिन्नमना, उदास नारी-हृदय की प्रतिक्रिया से मुक्त हैं । कुब्जा के प्रति बार-बार व्यंग्य के कारण उपालंभ में प्रभावहीनता आ गई है । कभी-कभी तो ऐसा लगता है मानो कवि की कल्पना शक्ति कुंठित हो गई है ।

कवि सुंदर ने उपालंभों एवं व्यंग्योक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है किन्तु परंपरानुगत विशेषणपूर्ण वर्णन होने के कारण कोई विशेष नवीनता के दर्शन नहीं होते । रघुनाथ के उद्धव संवाद में उपालंभ तथ्य अत्यंत कम है । अन्य भ्रमर-गीताओं में प्राप्त तीव्र व्यंग्य का अभाव कवि की इस रचना में निश्चय ही खटकता है ।

कल्याण ने गोपियों के रोष एवं व्यंग्य को तीव्र अभिव्यक्ति दी है । गोपियों का कृष्ण के प्रति रोष नहीं है । कृष्ण तो उनके प्रेमी हैं, उनके प्रति रोष कैसे हो सकता है ? परन्तु कुब्जा, नंद-यशोदा और अक्रूर के प्रति उनका रोष स्वाभाविक ही प्रस्फुटित हुआ है । कृष्ण उन्हें गोकुल में छोड़कर मथुरा जा ही नहीं सकते ऐसा उन्हें अनन्य विश्वास है । नन्द-यशोदा ने उन्हें मथुरा जाने दिया इसलिए वे उन्हें निर्दय प्रतीत होते हैं :-

"अंतरजामी थया अक्षामणा रे, निरदै नंद-यशोदा जाण ।
ज्यारे जाता दीधा जादवरायनो रे, नहि तो नरहरजी क्यम को प्रयाण ।।"[२]

उद्धव के ज्ञान का प्रतिकार करते हुए व्रजवनिताएं कहती हैं कि अपनी ज्ञान-गठरी कुब्जा के पास ले जाइए -

"ओधवजी । ब्रह्मज्ञान भणुं ओ हो छोरे, बांधी मूलगो बचका अपरंपार मांह ।
जतन करीने जुगते जालवजो रे, छोड़जो कुब्जा बैठी तांह ।।"[३]

१- भ्रमर-पचीसी : प्रेमानन्द पद-२०

२- ओधव जीनी गरबी : कल्याण-३७

३- ओधवजीनी गरबी : कल्याण १४

गोविंद की गोपियों में व्यंग्योक्तियों का अभाव है। हरि का गुनगान और उनका एकमात्र जीवनकार्य प्रतीत होता है, फिर भी कुछ पंक्तियों में उपालंभ के दर्शन होते हैं :-

"अहीं रम्या कोण आलखे ने ? सहु कहेता 'गोवाल',
मथुरामां जई माहावजी रे, थीआ भूपाल ।।"[१]

समग्रतः से कहा जा सकता है कि गुजराती के अधिकांश भ्रमरगीतकारों ने उपालंभ एवं व्यंग्योक्तियों का प्रयोग किया है। प्रेमानंद, कल्याण और सुन्दर जैसे कवियों ने भ्रमरगीत के परंपरानुगत उपालंभ तत्व की अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्त की है। उपालंभ की योजना से उनकी रचनाएं आस्वाद्य बनी हैं। व्यंग्योक्तियों के सफल प्रयोग के लिए प्रेमानंद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी इस प्रकार की उक्तियों में मार्मिकता, मौलिकता एवं कलात्मकता का सुन्दर समन्वय हुआ है। गुजराती भ्रमरगीतों में विप्रलंभ शृंगार की परिणति किस प्रकार हुई है यह भी यहां देख लेना समीचीन होगा।

विप्रलंभ शृंगार :

गुजराती के अधिकांश भ्रमरगीतों में विप्रलंभ शृंगार का निरूपण मिलता है। विप्रलंभ शृंगार की निष्पत्ति के निमित्त कृष्ण और गोपियों को परस्पर आलंबन विभाव के रूप में प्रयुक्त किया गया है और उद्दीपन विभाव का कार्य उद्धव की उपस्थिति और उनकी ज्ञानवाणी के द्वारा सिद्ध किया गया है। उसमें भी अनुभाव के रूप में गोपियों के अश्रु, उनकी कटाक्षपूर्ण चेष्टाएं और उनके मानसिक विषाद का बहुधा प्रयोग किया गया है। ग्लानि, विषाद, मोह, स्मृति, चिन्ता, दीनता, भ्रम, असूया, शंका, औत्सुक्य, गर्व जैसे व्यभिचारी भावों द्वारा शृंगार परिपुष्ट हुआ है। गुजराती भ्रमरगीतों में प्रकृति का उल्लेख बहुत ही कम हुआ है जबकि हिन्दी भ्रमरगीत काव्य में प्रकृति का चित्रण किसी न किसी रूप में अवश्य ही हुआ है। उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का आलेखन नहीं के बराबर है। अनुभाव और व्यभिचारी भाव गोपियों के गुणकथन, स्मरण, उद्विग्नता, व्यंग्यत्व, अभिलाषा आदि से युक्त कथनों में व्यक्त हुए हैं। रस विवर्त्त निष्पत्ति हेतु

१- भ्रमरगीतानुं पद - गोविंदराम-४६

विभिन्न कवियों ने इन उपादानों का प्रयोग अपने-अपने ढंग से किया है ।

कवि चतुर्भुज के काव्य में विप्रलंभ शृंगार रस की निष्पत्ति स्वाभाविक रूप में हुई है श्रीकृष्ण के मथुरागमन समय का गोपियों का विलापपूर्ण करुण चित्र, अक्रूर के प्रति उनका रोष, श्रीकृष्ण को गोकुल में ही रुक जाने के लिए अनुनय-विनय करना और मधुमास में अकेली नहीं छोड़ जाने का अनुरोध उत्तरोत्तर तीव्र रूप में व्यक्त हुआ है :-

"विण अपराधि कां परहरी ? मेहेली म जाउ मधुमांसि ।"[१]

इन शब्दों में गोपी की उन्मादयुक्त मनोदशा विप्रलंभ को अधिक गहरान बना देती है । उसके जीवन की करुणता तो यह है कि इतना प्रेम होते हुए भी प्रियतम को वह रोक नहीं सकती । प्राणाधार को दूर जाते हुए देखकर उसकी वाणी अवरुद्ध हो जाती है और हृदय फटने लगता है -

गद् गद् कंठ नि जोई वाटि, जोउरे कुष्ट हीयां न फाटि ।"[२]

गोपी की करुणा को मरणोन्मुख दशा तक पहुंचाकर कवि थोड़ी देर के लिए मथुरास्थित कृष्ण के वर्णन द्वारा करुणा का विस्मरण करा देता है । काव्य के मध्य भाग में उद्धव-गोपी मिलन के प्रसंग को लेकर कवि ने पुन: विप्रलंभ शृंगार का उत्कट निरूपण किया है । काव्य के अंत में भी 'गोपी सन्देश' के प्रसंग द्वारा अत्यंत अनुनय विनय भरी वाणी में गोपियों की हृदय-व्यथा को निर्मम कृष्ण के प्रति व्यक्त करके उनके अपार और अपार प्रेम की अभिव्यक्ति की है । कवि मानो रसशास्त्र का अच्छा ज्ञाता हो इस प्रकार ग्लानि, शंका, असूया, भ्रम, दीनता, चिंता, मोह, स्मृति, विषाद, औत्सुक्य, चपलता, हर्ष, आवेग, उन्माद आदि व्यभिचारी भावों के आलेखन द्वारा गोपी हृदय में स्थित सात्विक रति भाव का प्रत्यक्षीकरण कराते हुए विप्रलंभ शृंगार की निष्पत्ति करता है । जिस प्रकार दही मथने पर नवनीत ऊपर आने लगता है , उसी प्रकार यहां गोपी हृदय के मंथन से शुद्ध प्रेम का नवनीत प्रकट होता रहा है । उनकी आंखों में से निरंतर अश्रु-वर्षा होती रहती है । कभी-कभी वे नगर की नारियों के प्रति ईर्ष्या व्यक्त करती हैं और कभी कृष्ण के प्रति प्रणयजन्य रोष

१- भ्रमरगीता : चतुर्भुज १८

२- भ्रमरगीता: चतुर्भुज २१

प्रकट करती गोपियों के भावपूर्ण हृदय को देखकर उद्धव का मन पसीज उठता है। उन्हें वृन्दावन की लता बनने की इच्छा होती है जिससे गोपियों के चरण रज का स्पर्श हो सके। प्रणय भावना की उदात्तता को विप्रलम्भ शृंगार द्वारा सिद्ध करने में चतुर्भुजदास को सफलता मिली है।

भीम को यशोदा के विरह वात्सल्य को सघन-लाघव और तीव्र रूप में व्यक्त करने में जितनी सफलता मिली है, उतनी व तीव्र और सघन निष्पत्ति वह गोपियों के विप्रलंभ की नहीं कर सका है। उसके द्वारा चित्रित गोपियां अति वाचाल हैं। वे दलील करने में प्रवीण हैं। परिणामस्वरूप मात्र तर्क के विस्तार द्वारा यह कवि प्रेम-लक्षणा भक्ति को उच्च स्थान दे सका है। साथ ही मिलनोत्कंठा की अपेक्षा इन गोपियों को कृष्ण के भावी मिलन के प्रति विशेष आस्था है। कृष्ण अन्तोगत्वा मिलने ही वाले हैं, जैसी अटूट श्रद्धा के कारण विप्रलंभ अधिक तीव्र नहीं बन सका है। यद्यपि कुछ पंक्तियों में विरह की गहरी व्यथा के दर्शन होते हैं -

"अमने घणु गांभरे रे, रधो। एने केम वीसरयां ?
अमे ब्रेह्मां वेध्यां रे, सर्व तजी नीसरयां।"[१]

विश्वनाथ में अन्यत्र दुर्लभ श्रीकृष्ण के जीवन की गूढ़ व्यथा को अभिव्यक्ति मिली है। विश्वनाथ मात्र राधा या गोपियों की विरह व्यथा को अंकित करना नहीं चाहता। वह समस्त गोकुल को एक पात्र के रूप में मानकर वहां के कण-कण और जन-जन की विरहावस्था का आलेखन करता है। नन्द के मुख से निसृत वियोग व्यथा आर्द्रवाणी में व्यक्त हुई है, जो मार्मिक बन पड़ी है। गोपियों की विरह वेदना का वर्णन भी कवि ने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से किया है। ज्ञान और भक्ति के विवाद में भी विरह वेदना का प्रवाह रुकता नहीं है। विरह की इस दारुण दशा का वर्णन तीव्रतम होता गया है। प्रियतम के अभाव में गोपियों के लिए एक पल भी रहना दुःसह बन गया है। उपालंभों के माध्यम से विरह का दुःख करुणापूर्ण हो उठा है। इस प्रकार गहरे, करुण विषादमय वातावरण में काव्य समाप्त होता है। अन्य बल्लभ कवियों के समान कृष्ण-उद्धव पुनर्मिलन के प्रसंग का उल्लेख कवि विश्वनाथ ने नहीं किया है। यही कारण है कि उसका काव्य अन्त में पाठक के हृदय पर करुणा की रेखा

१- रसिकवीता : भीम-९०

अंकित कर जाता है ।

इस निरूपण के क्षेत्र में प्रेमानन्द का स्थान शीर्षस्थानीय है । भ्रमरगीता में उन्होंने विरह वात्सल्य को विशेष महत्व दिया है । जबकि 'भ्रमर-पचीसी' में विप्रलंभ शृंगार का अधिक वर्णन किया है ।

"अमो हारी सोल हजार, दासी नो दाव पड्यो"[१]

जैसे शब्दों में गोपियों के हृदय पर अंकित गहरे घाव की प्रगाढ़ वेदना का निरूपण हुआ है । कवि ने क्रमश: विप्रलंभ को तीव्रता प्रदान की है । इसके लिए उपालंभों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है । ईर्ष्या, प्रणय-प्रकोप, रोष, पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण, विलाप, मिलनोत्सुक्य, आदि द्वारा गोपियों की विभिन्न मन:स्थितियों का यथार्थ आलेखन हुआ है । भिन्न-भिन्न प्रसंगों के निरूपण द्वारा कवि में भावों की सुरम्य सरिता प्रवाहित की है । चन्द्रावली का विलाप हृदय स्पर्शी बन पड़ा है -

"काजाज कठण थयां, प्रभु जते न गयो प्राण ।
ए जीव्या- थी मरवुं रुडुं, उद्धव जी । तमारी आण ।"[२]

उसके हृदय पर ऐसे घाव अंकित हुए हैं जो औषधि से ठीक नहीं हो सकते । दीनता और मिलनोत्सुक्य के वर्णन द्वारा कवि ने विरह वेदना को पैना रूप दिया है और अभिनव दृष्टांतों द्वारा मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है -

"विरह वियोगनी दाझी के वेदना, परित्याग समुं हृदये ब्रज चोडयुं ।
राधा मीठाई दवाई ने मत आपर्यु, कुबजा खटाई पर मन दोडयुं । ।"[३]

गोपियों ने अपना तनमन धन-अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण को सौंप दिया फिर भी उनका त्याग उनके जीवन की सबसे बड़ी करुणा है ।

"तन मन धन अमो, श्याम ने सोंप्युं, तो ये नाखी गयो कष्ट-कूवे ।"[४]

१- भ्रमरपचीसी- प्रेमानन्द-पद १७
२- वही, पद १८
३- वही, पद १८
४- भ्रमरगीत, पुरुषोत्तम पद ४

पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण, भ्रमर उपालंभ, योग साधना का उद्धव द्वारा किए गये आग्रह का गोपियों द्वारा किया गया आक्रोशयुक्त उत्तर आदि रस को परिपुष्ट करने में सार्थक सिद्ध हुए हैं। उद्धव की ज्ञान चर्चा के प्रत्युत्तर में गोपियों द्वारा व्यक्त आक्रोश में करुण विप्रलंभ को चरमसीमा पर पहुंचा दिया है।

कवि पुरुषोत्तम ने अपने 'भ्रमरगीत' में भ्रमर के प्रवेश के साथ ही विप्रलंभ निष्पन्न करने का प्रयत्न किया है। किन्तु कवि को इस कार्य में जितनी सफलता मिलनी चाहिए, नहीं मिल सकी है। कलाकृति का भाव पक्ष जितना प्रबल बनना चाहिए नहीं बन सका है। फिर भी कुब्जा की ईर्ष्या, गोपियों की मिलनोत्कंठा, वियोग की असह्य वेदना, आत्मनिन्दा और श्रीकृष्ण की भी निन्दा द्वारा विप्रलंभ की करुणा को निष्पन्न करने का कवि ने प्रयास किया है -

"मधुकर। निर्लज सहेलि को हशे, न पड़े प्रेम ने पाश ?"[1]

में गोपी का श्रीकृष्ण के प्रति परवश आकर्षण विप्रलंभ की तीव्रता को व्यक्त करने में सक्षम है। सातवें पद में कृष्ण दर्शन की अभिलाषा चरमसीमा पर पहुंची है। आठवें पद में जो वियोग ७०७०७ वर्णन अंकित हुआ है वह भी विरह की मात्रा को बढ़ाने वाला है। श्रीकृष्ण के साथ उनका मन तो मथुरा गया है, मात्र शरीर के साथ प्राण बचे हैं :-

"मधुकर मनमोहन लेई गया, रह्या रह्या पिंडमां प्राण।"[2]

इस पर भी रसोद्रेक में सातत्य का अभाव है।

सुन्दर कवि अपने काव्य के पूर्व भाग में गोपियों की भक्ति का आलेखन करता है। और उद्धव को आश्चर्य मुग्ध मनोदशा में रख देता है। इसके पश्चात् विभिन्न प्रसंगों के मार्मिक वर्णन द्वारा विप्रलंभ को अधिक करुण बना देता है। उद्धव को अक्रूर समझकर रोष प्रकट करना, उद्धव को निकट से देखकर श्रीकृष्ण का सखा समझना, ब्रज की विस्मृति के कारण श्रीकृष्ण को उपालंभ देना, आत्मनिन्दा, उद्धव की ज्ञान चर्चा का तीव्र प्रहार युक्त सही -सही प्रत्युत्तर और बार-बार व्यक्त मिलनोत्कंठा के द्वारा

१- भ्रमरगीत, पुरुषोत्तम पद ४

२- उद्धव सन्देश, रघुनाथदास गरबी-१२५

रस को उत्तरोत्तर प्रगाढ़ बनाकर विप्रलंभ को उत्कटता तक पहुंचाया है ।

"एकन बार गोकुल आवजो" में अनुनय विनय द्वारा गोपी की विरह व्यथा को कवि ने मार्मिक रूप में व्यक्त किया है । आत्मभिव्यक्ति को अनेक प्रकार से प्रश्रय देकर कवि ने रस निरूपण में अद्भुत सफलता प्राप्त की है ।

कवि रघुनाथ की गोपियां अत्यन्त आर्तभरी वाणी में उद्धव जी से पूछती है कि श्रीकृष्ण हम दीन जनों को अरण्य में रोते हुए छोड़कर क्यों चले गये :-

"न मेहेरा थया रे नन्द ना लाल जी, रण-वगडामां रोतां मूक्यां राक जो

\+ \+ \+

लालजडां छेड़्यां रे, मेदियां, मरम करी ने मायां मोहना बाण जो" [१]

इन पंक्तियों में विरह व्यथा की तीव्र अभिव्यक्ति हुई है और करुण विप्रलंभ शुद्ध रूप में सफलतापूर्वक प्रगट हुआ है ।

कवि कल्याण अपनी "ओधकीता" में गोपियों की मार्मिक व्यंग्य पूर्ण वाणी द्वारा रस की तीव्रता सिद्ध करता है । अहर्निश अश्रु मोचन करती गोपियों का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है -

"घणा दिवसनी गूंजो करबी छे रे, हवे माहू मन मलवाने थाय ।
दिवसे माहू मन भमतु करे रे, रोतां रोतां रजनी जाय ।।" [२]

वर्षा ऋतु में पड़े कृष्ण के बाद चिन्हों को देखकर गोपियाँ तीव्र स्मरण-संवेदनों का अनुभव करती हैं, जिसके द्वारा रस निष्पत्ति सघन एवं प्रभावोत्पादक बनी है । गोपियाँ जब कहती हैं कि हम प्राण छोड़ना चाहती हैं किन्तु क्यों कर भी प्राण छूटते नहीं, तब उनकी असह्य वेदना हृदय विदारक रूप में प्रकट होती है और रस के चरमोत्कर्ष का अनुभव होता है ।

गोविन्दराम ने रस निष्पत्ति के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया हो ऐसा लगता है । उद्धव गोपी मिलन जैसे प्रसंग के विस्तारपूर्वक वर्णन द्वारा अन्य कवियों ने

१- उद्धव सन्देश, रघुनाथदास गरबी-३

२- ओधव जी नी गरबी-कल्याण ३

विप्रलंभ शृंगार के रसोद्रेक में सहायता पायी है। विस्तार की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया। उपालंभों एवं व्यंग्योक्तियों द्वारा रस निष्पत्ति का कोई प्रयास दृष्टिगोचर नहीं होता। गोपियों का अधिकांश समय स्मरण और गुण कथन में व्यतीत हुआ है। परिणामस्वरूप विरह वात्सल्य के निरूपण में कवि जितना सफल रहा है उतना विप्रलंभ शृंगार के क्षेत्र में नहीं। गोपियों के मुख से निःसृत श्रीकृष्ण का महिमागान यशोदा के स्मरणगान जितना समर्थ और प्रबल नहीं बन सका है। काव्य के अन्त में विप्रलंभ की अपेक्षा शान्त रस का विशेष अनुभव होता है।

निष्कर्ष :

हिन्दी एवं गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में विरह वात्सल्य एवं विप्रलंभ शृंगार की प्रचुरता समान रूप से मिलती है। दोनों भाषाओं में व्यंग्य एवं उपालंभों के समुचित प्रयोग के कारण विरह वर्णन अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। गुजराती कवियों की अपेक्षा हिन्दी के कवियों ने गोपियों के विरह वर्णन में प्राकृतिक परिवेश का विशेष आधार ग्रहण किया है। गुजराती के कतिपय कवियों ने विरह वात्सल्य का वर्णन अधिक व्यापक एवं विशद रूप में किया है।

— x —

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी एवं गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में नाटकीय तत्व

भ्रमरगीत काव्य का भावपक्ष देखने के पश्चात् प्रस्तुत अध्याय में हम हिन्दी एवं गुजराती भ्रमरगीत काव्य में प्राप्त नाटकीय तत्वों पर विचार करेंगे। भ्रमरगीत प्रसंग कृष्ण काव्य का एक अत्यंत मार्मिक एवं नाटकीय प्रसंग है। संवादात्मकता, गेयता तथा कौतुकपूर्ण स्थितियों के समावेश के कारण हिन्दी एवं गुजराती दोनों भाषाओं के भ्रमरगीत काव्य में नाटकीय तत्वों को देखा जा सकता है।

संवादात्मकता तथा पदों की गेयता के गुणों को लक्ष्य में रखकर विद्वानों ने वेदों की ऋचाओं तक में नाट्यात्मकता की खोज कर ली है। उन्हें ऋग्वेद में इस प्रकार के लगभग पंद्रह सूक्त मिलते हैं जिनमें यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी, अगस्त्य-लोपामुद्रा आदि के सम्वाद प्रमुख हैं।[1] वेदों के ये सूक्त तो आदिकालिक हैं जबकि नाटकों का स्वरूप भी निर्धारित हो पाया होगा। किन्तु भ्रमरगीत काव्य तो मध्यकालीन काव्य-मनीषा की सर्जना है जो मूलरूप से श्रीमद्भागवत पर आधारित है।

यह भ्रमरगीत काव्य पद शैली में निर्मित होने के कारण अतीव मधुर एवं गेय है तथा इसके संवाद विशेषत: गोपी-उद्धव संवाद व उद्धव-गोपी संवाद तो अत्यंत मार्मिक व आश्चर्यजनक भावों की सृष्टि करते हैं। भरत मुनि की निम्नांकित पंक्तियां 'भ्रमरगीत' पर अधिकांशत: चरितार्थ होती हैं :-

मृदुललित पदाढ्यं गूढ़ शब्दार्थ हीनम्
जनपद सुखबोध्यं युक्ति मन्नृत्य योज्यम्।
बहुरस कृतमार्गं संधि सन्धानयुक्तम्।
प्रभवति शुभ काव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्।।

(नाट्य शास्त्र)

भ्रमरगीत काव्य भक्तिभाव पूर्ण धार्मिक काव्य के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में संस्कृत नाटक की समृद्ध परंपरा का लोप सा हो गया था। और इस अभाव की पूर्ति

१- देखिए- मध्यकालीन हिन्दी नाट्य -परम्परा और भारतेन्दु पृ० १
लेखक कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह। प्रकाशक- ग्रन्थ कुटीर, पी०रोड, कानपुर।

के लिए लोकधर्मी नाट्य-परंपरा तथा धार्मिक नाट्य-परंपरा का परिचालन प्रारंभ हुआ । यहां इस तथ्य पर संक्षेप में विचार कर लेना भी असंगत न होगा कि वह कौन से कारण रहे होंगे जिनसे मध्यकाल में व्यवस्थित नाट्य परंपरा का लोप हो गया था । मध्यकालीन भारतीय इतिहास मुस्लिम शासन के लिए स्मरण किया जायगा । मुसलमानों में नाटक रचना व अभिमंचन किया जाना वर्जित है इसलिए शासन के भय से सम्भवत: नाट्य रचना का अभाव रहा होगा । द्वितीय: मुस्लिम शासकों ने अपनी बर्बरता में आकर अनेक धार्मिक स्थानों, देवालयों तथा ग्रंथालयों को नष्ट ही कर चुके थे । संभवत: उस समय के प्रेक्षागृहों को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया होगा । इसके अतिरिक्त 'यथा राजा तथा प्रजा :' के अनुसार तत्कालीन सम्भ्रान्त नागरिकों, दरबारियों तथा कलावन्तों ने भी नाटक देखना अपनी मर्यादा के विपरीत माना होगा । उनके आश्रय-दाता व शासक तो नाटकों की ओर से उदासीन थे ही, और शासक का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक प्रभाव शासित पर पड़ता ही है, अत: समाज के सुशिक्षित एवं सम्भ्रान्तजन अपने मनोरंजन के लिए कवि गोष्ठियां एवं कवि सम्मेलनों का आयोजन कर लेते होंगे । इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं ।

शासकों की उपेक्षा से लोक मानस की अभिरुचि नाटकों की ओर से हट नहीं गई वरन् उन्होंने सुव्यवस्थित साहित्यिक नाट्य परंपरा के स्थान पर पुरातन से चली आती हुई तथा मनोनुकूल लोकधर्मी नाट्य परंपरा का अवलंब ग्रहण किया दूसरी ओर धार्मिक जनता एवं भक्तों ने धार्मिक नाट्य परंपरा का सूत्रपात किया । अर्थात् रामलीला और रासलीला का अभिमंचन प्रारंभ कर दिया जिसके लिए निश्चित रंगमंच था न बाह्य आडंबर और न निश्चित स्थान ही ।

गोस्वामी तुलसीदास जैसे लोकमानस के मर्मज्ञ कवि ने अपने रामचरित मानस में अनेक नाटकीय परिस्थितियों का संयोजन किया है तथा उसमें सुन्दर संवादों का परिनिवेश हुआ है । आचार्य कविवर केशवदास जितने सजग थे शासकों की दुरभिसंधि से कि उन्होंने पृथक् नाट्य ग्रंथ की रचना न कर अपनी 'रामचंद्रिका' में नाटकों के सुन्दर संवादों को समाविष्ट कर बतला दिया कि रामचंद्रिका काव्य भी है । साथ ही अपने युग

के जनमानस की नाटक विषयक पिपासा को भी बहुत कुछ शान्त कर देती है। यह तो रही मर्यादा पुरुषोत्तम रामभक्त कवियों की नाटक विषयक सजगता। अब लीला पुरुषोत्तम कृष्ण भक्तों को भी इस संदर्भ में देख लेना होगा। कृष्ण तो स्वयं सबसे बड़े नट रहे हैं और उनका सम्पूर्ण जीवन एक महान नाटक ही तो है। तथा ब्रजभूमि वरन् समस्त भारत भूमि ही तो उनकी रंगस्थली है। सूरदास, परमानन्ददास तथा नन्ददास जैसे महान् कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण का लीला-गान किया। उनके जीवन के कुछ पक्ष तो इतने मार्मिक रहे हैं कि हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं के कवियों ने तल्लीनता पूर्वक उनका चित्रण किया है। इन पक्षों के चित्रण में कृष्ण भक्त कवियों ने भी 'तुलसी एवं केशव' की भांति अपने पदों में नाटकीयता लाने का यत्न किया। यद्यपि इनका मार्ग उतना सुकर नहीं था जितना प्रबंध काव्यों के रचयिताओं का था, तथापि उन्होंने कृष्ण के मथुरागमन से प्रारंभ भ्रमरगीत प्रसंग में ऐसी नाटकीयता ला दी है कि उसे किसी भी प्रकार 'मानस' अथवा 'रामचन्द्रिका' की नाटकीयता से न्यून नहीं आंका जा सकता।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कृष्ण भक्तों ने रासलीला का उपक्रम किया और रासलीला में गाये जाने के लिए तथा प्रेक्षकों के समक्ष मार्मिक स्थलों की अनुकृति किए जाने के लिए उन्होंने कृष्ण भक्त कवि सूरदास, नन्ददास आदि के पदों का चयन किया। इसमें उन्होंने भ्रमरगीत सम्बंधी पदों का भी सन्निवेश किया। इस प्रकार भ्रमरगीत काव्य को अभिनीयता प्रदान की गई। इसके पूर्व कि हम रासलीला के रूप में भ्रमरगीतों के प्रयुक्त किए जाने की चर्चा करें रास व रासलीला के स्वरूप तथा उपक्रम के विषय में भी संक्षिप्त प्रकाश डाल देना और समीचीन होगा।

रास और रासलीला :

संस्कृत साहित्य में रास शब्द समूह नृत्य के रूप में प्रचलित है। डा० दशरथ ओझा ने 'रास' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बंध में विस्तारपूर्वक विचार किया है।[1] ऐसा

१- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : डा० दशरथ ओझा, पृ० ७१ से ७३ तृतीय संस्करण, प्र० राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

प्रचलित रहा है कि 'रास' शब्द रस का बहुवचन है। 'रसानां समूहो रास :'। भागवत के अनुसार 'तासां मध्यद्वयोर्द्वयोरिति' अर्थात् महारास में दो गोपियों के बीच एक कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। कालान्तर में स्त्रियों और पुरुषों के वृत्ताकार सम्मिलित या स्वतंत्र नृत्य का नाम ही रास हो गया। श्री हेमचंद्राचार्य ने अपने काव्यानुशासन में रास को इसी व्यापक अर्थ में लिया है -

"अनेकनर्तकी भोज्यं चित्रताललयान्वितम् ।
तच्चतु:षष्टियुगलाद, रासमगुणोद्भवे ।।

गुजराती साहित्य के मूर्धन्य समीक्षक श्री के.का.शास्त्री जी ने 'रास' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है -"युवक और युवतियां या अकेले युवक या मात्र युवतियों द्वारा वृत्ताकार में तालबद्ध रूप में जो नृत्य किया जाता है उसे रास कहते हैं। कृष्ण की रासलीला भी इसी रूप में लिया जा सकता है।[१] इस प्रकार रास एक विशेष प्रकार का नृत्य है।

रासलीला :

रासलीला रास का ही विकसित रूप है। सोलहवीं शती में श्री वल्लभाचार्य तथा हितहरिवंशादि महात्माओं ने लोक प्रचलित जिस शृंगार प्रधान रास में कर्म के साथ नृत्य,संगीत की पुन: स्थापना की और उसका नेतृत्व रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण को दिया था, वही राधा तथा गोपियों के साथ कृष्ण की शृंगारपूर्ण क्रीडाओं से युक्त होकर रासलीला के नाम से अभिहित हुआ।"[२] रासलीला लोकनाट्य का एक प्रमुख अंग है। लीला तथा नाटक में कुछ अंतर है। लीला में भगवद्-भक्ति का प्रदर्शन होता है। भगवान की जीवन घटनाओं का प्रस्तुतीकरण करके सामान्यजन के अन्तस्तल में भगवान के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का उद्देश्य होता है और नाटक में जीवन के लौकिक-पक्ष का उद्घाटन होता है। तात्पर्य यह कि लीला, दर्शन, ध्यान और चिन्तन को

१- आपणा कवियो - खंड-१ : के.का.शास्त्री पृ० ६३-६४

२- हिन्दी साहित्य कोश : पृ० ६५५

वस्तु है और नाटक प्रेक्षण तथा ग्रहण की । लीला अन्तःकरण को भावदाकार बनाती है और नाटक व्यक्ति का चरित्र निर्माण कर सकते हैं, तथा समाज को एक निश्चित दिशा में ले जा सकते हैं ।"[१] रासलीला मनुष्य की वृत्तियों को परिष्कृत व परिमार्जित करने में बहुत ही सहायक होती है । यह भक्तों को ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द की उपलब्धि करा देती है । रासलीला में कृष्ण के जीवन का कोई एक प्रसंग लिया जाता है और उसका अभिनय किया जाता है । किसी भी लीला के अभिनय में लगभग तीन घण्टे का समय लग जाता है । इसमें छः सात अभिनेताओं की आवश्यकता होती है । चार गोपियां होती हैं जिन्हें सखी स्वरूप की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । राधा को स्वामिनी स्वरूप और कृष्ण को प्रभु स्वरूप नाम से जाना जाता है । इनके अतिरिक्त एक दो सखा स्वरूप भी होते हैं । कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर रासलीला के पात्र दुहरी तिहरी भूमिका का भी निर्वाह करते हैं। कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर दर्शकों में से भी कुछ पात्रों का चयन कर लिया जाता है । कृष्ण की वेशभूषा अति कान्तिमयी होती है और राधा बना हुआ पात्र साड़ी और उत्तरीय धारण करता है । उसकी नाक में बुलाक तथा मस्तक पर चंद्रचिन्ह एवं बंदिव बंदनी रहती है।[२] रासलीला के दृश्य -विधान में किसी प्रकार की दुरूहता नहीं होती है, वह सहज सरल ढंग से योजित हो जाते हैं । जैसे- नटनागर कृष्ण की मुद्रा के प्रदर्शन के लिए उनके पीछे कुछ लोग अनेक वर्णों के वस्त्र तानकर खड़े हो जाते हैं और गोपियां उनके पीछे से देखने की चेष्टा करती हैं । इसी तरह कुन्ज का दृश्य दिखलाने के लिए सिंहासन के पीछे एक वृक्ष की डाली लगाकर उस पर रंग-बिरंगे वस्त्र तान दिए जाते हैं । वस्तुतः रासलीला के अभिमंचन में किसी प्रकार के वाह्याडम्बर का अत्यल्प प्रयोग होता है । कम से कम पात्रों से सरल दृश्य विधान द्वारा कृष्ण की लीलाओं को सामाजिकों के समक्ष अभिनय द्वारा प्रस्तुत करके उन्हें आध्यात्मरस का पान कराया जाता है । यहां हमें रासलीला के रंगमंचीय विधान को भी समझ लेना आवश्यक है जिससे रासलीला का परिचय और भी स्पष्ट हो जायेगा ।

१- मध्यकालीन हिन्दी नाट्य परंपरा और भारतेन्दु : पृ० ३७

२- दे. विशेष विवरण के लिए मध्यकालीन हिन्दी नाट्य परम्परा और भारतेन्दु -मध्यकालीन धार्मिक नाट्य परम्परा ` अध्याय

भ्रमरगीतकारों में नन्ददास भी अग्रणी हैं। नन्ददास जी ने रासलीला में अभिनय हेतु दृश्य काव्यों की रचना की थी इस सम्बंध में डा० दशरथ ओझा जी ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -"ब्रजभाषा के प्रारंभिक रासलीला सम्बंधी नाटक नन्ददास जी द्वारा विरचित हुए। उन्होंने मधुर स्वर में गाने योग्य स्फुट गेय पद भागवत दशम-स्कंध के अनुवाद के रूप में कथा, और लीला के रूप में दृश्यकाव्य की रचना की। कारण यह था कि उनमें सूर की तरह तन्मयता, तुलसी की तरह प्रबन्ध पटुता के साथ साथ संवादोपयुक्त तीखी तर्क बुद्धि और वाग्वैदग्ध्य भी था। नंददास की गोपियां उद्धव को अवाक्य करती हैं, आंसुओं से नहीं वाणी से। नंददास में दृश्य काव्य के अनुकूल किसी कथा के आवश्यक अंश को ग्रहण करने और अनावश्यक को पृथक करने की क्षमता थी। एक ही कथावस्तु को संगीत, कथा और दृश्यकाव्य के योग्य गढ़ लेने की उनमें अद्भुत शक्ति थी।"[१]

रासलीला करने वालों की मण्डलियां हुआ करती हैं जो साधारण रंगमंच पर अभिनय पूर्ण कथा, काव्य और संगीत से युक्त लीला गान प्रस्तुत करती हैं। आज भी रासलीला का रंगमंच साधारण होता है। उसका प्रदर्शन ऊंचे चबूतरों पर होता है। कभी-कभी बांस और कपड़ों से ऊंचा तख्त तैयार कर लिया जाता है। उसमें एक पर्दा रहता है जिसके पीछे से पात्र आते रहते हैं। लीला के प्रारंभ में व्यवस्थापक दिखलायी जानेवाली लीला का निर्देश करने के अतिरिक्त पात्रों और प्रसंग विशेष की प्रशंसा द्वारा प्रेक्षकों में जिज्ञासा भरने का कार्य करता है। लीला के प्रारंभ में ही राधा-कृष्ण की युगल रूपि की आरती की जाती है। तदनन्तर लीला का प्रारंभ होता है। राधा, कृष्ण, गोपियां आदि प्रमुख पात्र होते हैं। विदूषक के रूप में मनसुखा रहता है जो बीच बीच में व्यंग्य और विनोद द्वारा मनोरंजन करता रहता है। इन लीलाओं में पद प्रधान संवादों के साथ साथ नृत्य, गीत, वेणुध्वनि, ताल, लय और रस की अबाध धारा बहती रहती है। लीला के अंत में युगल रूपि की पुनः आरती होती है और लीला के विषय में मंगलकामना की जाती है।

१- हिन्दी नाटक -उद्भव और विकास-डा० दशरथ ओझा, राजपाल एंड संस, दिल्ली पृ० ११

भ्रमरगीत सम्बन्धी नाटकों का अभिनयन किये जाने का उल्लेख हमें डा० चन्द्रप्रकाश सिंह जी के ग्रंथ में मिलता है। यह उल्लेख अत्यंत महत्वपूर्ण है अतएव, इसमें से कुछ अंश यहां उद्धृत कर देना समीचीन प्रतीत होता है। भ्रमरगीतों के सम्बंध में इससे बड़ा प्रमाण देखने में नहीं आया। लेखक ने स्वयं "उद्धव लीला के अवसर पर हजारों दर्शकों को, जिनमें अच्छे विद्वान और ऊंची अवस्था के संत थे। करुण विगलित होकर निरन्तर अश्रुपात करते देखा है। इस सफलता का मूल कारण लीलाओं की सरस कथावस्तु और उसका सरसतर नाटकीय विन्यास है।[१]

यद्यपि इनका कथानक छोटा होता है पर इनमें कार्य की तीनों अवस्थाएँ प्रारंभ, प्राप्त्याशा और फल फलागम स्पष्ट रूप से मिलती है। प्रारंभावस्था में ही प्रयत्न का योग रहता है और फलागम में नियताप्ति का समावेश। इनमें मुख और निर्वहण संधि की योजना विशेष रूप से बड़ी रमणीय और विचित्र होती है, इसलिए शरम और उपसंहार दोनों बड़े चमत्कारी होते हैं। बीच बीच में कितने ही सुन्दर संध्यंगों का स्फुरण स्वतः होता चलता है। कौशिकी की तो ये लीलायें कोष ही हैं और नर्म आदि विविध अंगों का ऐसा उन्मेष तो अनेक प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों में भी उपलब्ध नहीं होता।"[२] महात्मा सूरदास जी ने लीला रहस्य को स्पष्ट करने के लिए भ्रमरगीत प्रसंग पर एक पद लिखा है

ऊधौ कहियौ यह संदेश।
लोग कहत तुम्हिजा की प्रभुता, तुम मकुवहु जनि लेष।
कबहुंक इत पग धारि सिधारहु, हेरि उहि सुखद सुबेष।
हमरे मन रंजन कीन्हें तैं, ह्वै हौ भक्त नरेश।
तब तुम इन टकराह रहौगे, देखौगे यह देख।
नहिं बैकुंठ सकल ब्रह्मांडहु, ब्रज बिनु सब कृत कलेश।
यह सिखि मंत्र दियौ नंदनंदन, ब्रज तजि भ्रमत विदेश।

१- मध्यकालीन हिन्दी नाटक परंपरा और भारतेन्दु पृष्ठ ४५

२- वही, पृष्ठ ४६

जसुमति जननि प्रिया राधिका, देखै औरहुं देस ।
इतनी कहत कहत श्यामा पै, कछू न रह्यौ अवसेस ।
मोहनलाल प्रबाल मृदुल -मन, लच्छन करी सुहेस ।
लो ऊधौ जो दुसह बिरह -ज्वर जो नृप नगर सुरेस ।
कैसो ज्ञान कह्यौ लहि आऊँ, किहिं पठयो उपदेस ।
मुख मृदु रुचि मुरली रव पूरत, गोरज करबुरकेस ।
नटनागर गति बिकट कपट तब, मन तैं कियौ प्रवेस ।
अति व्याकुल अकुलाइ धाइ फिर पोंछत नयन कुसे ।
कुम्हिलानौ मुख-पद्म परस करि, देखत रबिहिं बिसेस ।
सूर सोम सनकादि इंद्र,ब्रज, सारद निगम महेस ।
नित्य बिहार सकल सुर बधू प्रेम गति, कह गावै मुख सेस ।[१]

उद्धव लीला :

ब्रज मंडलियों द्वारा भ्रमरगीत प्रसंग सामान्यत: उद्धव-लीला के नाम से अभिनीत किया जाता है । आवश्यकतानुसार किंचित परिष्कार भी कर लिया जाता है । इस प्रसंग को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए कम से कम छ: पात्र आवश्यक हैं - १-राधा, २- कृष्ण, ३- उद्धव और ४-तीन गोपिकाएं । गोपिकाओं की संख्या अधिक भी हो सकती है । इन पात्रों की वेशभूषा, साज-सज्जा आदि परंपरानुगत होता है । इस लोकनाट्य के प्रयोग द्वारा भ्रमरगीत प्रसंग सजीव रूप में दर्शकों के सामने उपस्थित होता है । विभिन्न कवियों द्वारा इस प्रसंग को नाटकीय दृष्टि से कितनी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है इस पर अब हम विचार करेंगे । श्रीकृष्ण का गोकुल छोड़कर मथुरा जाना, उद्धव का श्रीकृष्ण का संदेश लेकर मथुरा आना, नंद यशोदा से मिलना, माता-पिता का पुत्र वियोग में रोना राधा और गोपियों का प्रिय विरह में आंसू बहाना, उद्धव के अभिनयात्मक ज्ञानोपदेश का भाव एवं

१- सूरसागर द्वितीय खण्ड -दशम स्कंध पृ० ४०७८

तर्कपूर्ण खण्डन, गोपियों के प्रेमभरे हृदय के सामने उद्धव का नतमस्तक होना आदि प्रसंग निश्चय ही अभिनयात्मक हैं। भ्रमरगीत काव्य की पात्र सृष्टि पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता। विस्तार भय के कारण हम अत्यंत संक्षेप में हिन्दी एवं गुजराती भ्रमरगीत काव्य का आधार ग्रहण कर मात्र प्रमुख पात्रों पर बड़े संक्षेप में प्रकाश डालना चाहेंगे।

पात्र-सृष्टि :

सूरदास के नन्दनागर श्रीकृष्ण स्नेह की प्रतिमा हैं। ब्रज वियोग के कारण उनकी व्यथा जब असह्य हो जाती है तब वे अपने प्रिय सखा उद्धव से कहते हैं कि गोकुल के समान संसार में अन्यत्र सुख नहीं है -

"सुनहु उमंग सुत मोहि न बिसरत,
ब्रजवासी सुखदाई।
यह चित होहि जाउं मैं अबहीं,
इहां नहीं मन लागत ।।

श्रीकृष्ण का अपने प्रिय सखा उद्धव के साथ यह वार्तालाप नाटकीय दृष्टि से अत्यंत प्रभावोत्पादक है। उनकी भाव विह्वलता देखकर कोई भी सहृदय दर्शक द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता। नंद, यशोदा, गोप, गोपियों और ब्रजभूमि के प्रति उनका प्रेम अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।

नन्ददास के भंवरगीत का श्रीकृष्ण से सम्बंधित अंतिम दृश्य भी रंगमंचीय दृष्टि से अत्यंत मार्मिक और प्रभावोत्पादक कहा जा सकता है। अपने अभिमानी, ज्ञानी सखा उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण ने जो शब्द कहे हैं वे अतीव हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं -

"बहुत
"सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ ।।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि सांवर गात।
कल्प तरोरुह सांवरो ब्रजबनिता भई पात ।।

भौ मैं उनमैं अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं ।
ज्यौं देखौ मो माहिं वैं त्यौं मैं उनहीं माहि ।।
तरंगनि वारि ज्यौं ।"

हरिऔध जी के श्रीकृष्ण अत्यंत मानव रूप में रहे हैं । उनका चरित्र विवेकपूर्ण और बुद्धिमानी होने पर भी गोकुल के प्रति उनका मानव-सहज आकर्षण द्रष्टव्य है -

"शोभा -अद्भुत -शालिनी-ब्रज धरा व्यक्तैं प्यारी गोपिका ।
माता प्रीति-मयी स्नेह प्रतिमा, वात्सल्य-धाता-पिता ।।
प्यारे गोप-कुमार, प्रेम-मणि के पाथोधि से गोप वे ।
भूले हैं न, सदैव याद उनकी देती व्यथा है महा ।।

कवि रत्नाकर के श्रीकृष्ण अनन्य प्रेमी के रूप में आये हैं । उनके हृदय में ब्रजवासियों के लिए अनन्य आकर्षण है । उनका हृदय कोमल भावनाओं से युक्त है -

"ऊधौ ब्रज-बास के विलासनि कौ ध्यान धंस्यौ ।
निसि दिन आंटे लौं करेजैं कसकत है ।"

सूरदास के भ्रमरगीत में राधा का वर्णन अत्यंत संक्षिप्त रूप में व्यक्त रहा है । प्रेम और भक्ति को लेकर ज्ञानी उद्धव के साथ उनके वाद-विवाद का उल्लेख नहीं मिलता । 'अति मलिन वृषभानु कुमारी' के रूप में विरह व्यथिता नायिका का चित्र सजीव रूप में अंकित हुआ है ।नन्ददास के भंवरगीत में और तुलसीदास की भ्रमरगीत सम्बंधी रचनाओं में राधा का उल्लेख नहीं हुआ है । भारतेन्दु ने भी प्रेममयी राधा का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया है । एकमात्र 'प्रिय-प्रवास' में राधा का चरित्र विस्तार पूर्वक अंकित हुआ है । हरिऔध जी ने ज्ञानी उद्धव के सामने राधा को प्रस्तुत कर इस असाधारण नारी की योग्यता प्रस्तुत करने का सम्यक् प्रयास किया है । यहां राधा साक्षात् प्रेम की प्रतिमूर्ति है । श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् विरह जनित प्रेम का कवि ने

प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रण किया है। विरह वियोगिनी राधा श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए लालायित है -

"होते मेरे निकेतन में पक्ष जो पक्षियों से।
त्यों ही मैं प्रमुद उड़ती श्याम के पास जाती ।।"

मथुरा में श्रीकृष्ण की राजनीति को लेकर अत्यंत व्यस्त रहने लगे। ब्रज-वासियों के लिए उद्धव के साथ संदेश भेजते समय राधा के सम्बंध में श्रीकृष्ण ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है उनमें मार्मिकता की झलक मिलती है -

"जो राधा वृष-भानु-भूप-तनया स्वर्गीय दिव्यांगना।
शोभा है ब्रज पोत की अवनि की स्त्री-जाति की वंश की ।।
खोगी हा! वह भग्नभूत अति ही मेरे वियोगाब्धि में।
जो हो संभव तात पोत बन के त्राण देना उसे ।।
(प्रिय प्रवास -पृ० ९१०-९१)

"प्रिय -प्रवास" की राधा अन्य पूर्ववर्ती नायिकाओं से कहीं अधिक करुणा, उदारता और विश्व-प्रेम आदि भावों से ओतप्रोत है -

"पाती हुं विश्व प्रियतम में विश्व में प्राण प्यारा।
ऐसे मैंने जगतपति को श्याम में है विलोका ।।"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सर्वस्व समर्पण की भावना से युक्त राधा का चित्रण इन शब्दों में किया है -

"एक तुझी को, एक तुझी को अखिल अर्पित,
राधा के सब कर्म हरे"

श्री श्यामसुन्दरलाल दीक्षित ने अपने "श्याम संदेश" के दूसरे सर्ग में राधा के नितान्त प्रेमपूर्ण चरित्र का आलेखन इन शब्दों में किया है -

"राधा की कछु दसा व्यथा को रंग अमित कैवै हवै।
पीरो-सीरो गात, नयन जलधार चली हवै ।।"
व्यौत भन्यौ कछु पसंग को, होत विषाद विलाप।
बाढ़ति सुरसरि धार लौं ।।

जागति, मूर्छित होती, उठैं, गिरि परैं भूमि पै ।
सो वृषभानु कुमारि जिमैं हिय नन्द-नन्दन लै ।।"

भ्रमरगीत काव्य में राधा का चरित्र सर्वांग संपूर्ण रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सका है ।

सूर की गोपियाँ भाव-प्रवण हैं । उनका हृदय कोमल से कोमलतम भावनाओं से युक्त है । श्रीकृष्ण की पाती पाकर वे प्रसन्न हो जाती हैं -

"निरखति अंक श्याम सुन्दर के बार बार लावति लै छाती ।
लोचन जल कागद मसि मिल कै ह्वै गई स्याम स्याम जूकी पाती ।।"

उद्धव के ज्ञानमार्ग का प्रतिवाद करते हुए उन्होंने जो कुछ कहा है उसमें हृदय-पक्ष का प्राधान्य है । ज्ञानदर्प से युक्त उद्धव को ग्रामीण वातावरण में पली भोली-भाली गोपियाँ अपने अनन्य प्रेम के प्रमाण प्रस्तुत करते हुए पराजित कर देती हैं । कुब्जा के प्रति उनका रोष देखते ही बनता है । उन्होंने निराकार-निर्गुण का मधुर उपहास करते हुए ज्ञान-योग पर प्रेम भक्ति की विजय प्रस्थापित की है ।

नंददास की गोपियाँ नागरी नारियाँ हैं जो प्रत्युत्पन्न मति और वाक्चातुर्य से युक्त हैं । उद्धव के ज्ञान और योग मार्ग का विरोध उन्होंने बुद्धिपूर्ण तर्कों से किया है -

"जो मुख नाहिं हुतो कहो किन माखन खायो ।
पायन किन गो संग कहो वन-वन को धायो ?
आंखन में अंजन दयो गोबरधन लयो हाथ ।
नन्द जसोदा पूत हैं कुंवर कान्ह ब्रजनाथ ।।"

उद्धव के साथ गोपियों का वाद-विवाद सरस और साकार दोनों के लिए समान रूप रसप्रद है । नंददास के उद्धव और गोपियों का वाद-विवाद आद्यंत नाटकीयता से युक्त है । गोपियों के प्रबल व्यंग्यपूर्ण तर्कों के सामने उद्धव का ज्ञानगर्व नष्ट हो जाता है -

"देखत इनकौ प्रेम नेन ऊधौ को भाज्यौ ।
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ ।।"

तुलसीदास की गोपियाँ शिष्ट और मर्यादापूर्ण हैं। भारतेन्दु की गोपियों में भी भावपक्ष का प्राधान्य है। वे प्रेम की अत्यधिक पीड़ा से ग्रस्त हैं। हरिऔध जी की गोपियाँ सूर, तुलसी और नन्ददास की गोपियों से भिन्न हैं। वाद-विवाद की अपेक्षा विरह-निवेदन में ही उन्होंने जीवन की सार्थकता मानी है। रत्नाकर की गोपियाँ भी नन्ददास की गोपियों के समान तर्कशील हैं। उन्होंने अपने विशद ज्ञान द्वारा उद्धव का ज्ञानमार्ग नष्ट किया है। भ्रमरगीत काव्य की गोपियाँ अधिकांशत: प्रेम-भक्ति की पुजारिन के रूप में आई हैं। श्रीकृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम रहा है।

सूरदास के उद्धव निर्गुण मतवादियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रीकृष्ण को इस बात का दु:ख है कि अपने प्रिय मित्र, ज्ञानी तथा विद्वान उद्धव उनकी विरह व्यथा को समझने में असमर्थ हैं। उनका ज्ञानमार्ग दूर करने के लिए तथा प्रेम भक्ति की महत्ता समझाने हेतु के लिए उन्हें गोपियों के पास भेजा गया है। सूर के उद्धव को अपने ज्ञान-प्रदर्शन के लिए अधिक अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। नन्ददास ने उद्धव को अपने ज्ञान प्रदर्शन का पूरा-पूरा अवसर दिया है। परिणामस्वरूप नन्ददास के गोपी-उद्धव संवाद में जो नाटकीयता है वैसी वाक्चातुर्यता सूर के गोपी-उद्धव संवाद में नहीं है। हरिऔध के उद्धव सूरदास और नन्ददास के उद्धव से भिन्न हैं। व्रज-वनिताओं का विलाप सुनकर उनका हृदय द्रवित हो उठता है। राधा के प्रति भी उनके मन में असीम श्रद्धा है -

'व्रज-कुमारि -विभूषण राधिका।
चरण की रज ले हरि बंधु भी
परम-शान्ति समेत विदा हुए।।'

रत्नाकर जी के उद्धव परम ज्ञानी और तर्क द्वारा अपने पक्ष का समर्थन करने वाले हैं। इस प्रकार उद्धव का पात्र वैविध्यपूर्ण रहा है। नन्द, यशोदा और कुब्जा भ्रमरगीत काव्य के गौण पात्र हैं।

गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में चरित्र-चित्रण :

किसी भी कलाकृति की सफलता के लिए चरित्र-चित्रण महत्वपूर्ण है। कृति में अंकित पात्रों के स्पष्ट सुन्दर एवं सजीव व्यक्तित्व के उभार द्वारा ही समग्र कृति आस्वाद्य रंगमंचीय एवं आत्मीय बनती है। भ्रमरगीत के कवियों ने पौराणिक पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वप्रयत्न द्वारा मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है। अपने युग की सामाजिक परंपराओं को ध्यान में रखते हुए परंपरानुगत पात्रों को युगानुरूप नया रूप रंग देने का विभिन्न कवियों ने यथामति प्रयत्न किया है।

नरसिंह के 'गोपी संदेश' में वे भ्रमर प्रवेश का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अत: प्रस्तुत काव्य की गणना भ्रमरगीत में मात्र विषय वस्तु की दृष्टि से ही हो सकती है। प्रियतम के प्रति अपार प्रेम के कारण थोड़ी देर के लिए ईर्ष्या को भूलकर कुब्जा को सलाह सूचना देती हुई गोपी का हृदयस्पर्शी पात्र विधान करने का श्रेय नरसिंह को है। उसके अभिप्राय में कुब्जा नारी है जो कृष्ण के साथ प्रेम करने के योग्य नहीं है।[१] कुब्जा को श्रीकृष्ण की सेवा सुश्रूषा के लिए दी गई सीख, श्रीकृष्ण की रुचि-अरुचि का परिचय आदि का गोपी-मुख से कवि ने सुन्दर निरूपण किया है।

चतुर्भुज ने अपनी भ्रमरगीता में अधिकांश पात्रों को सजीव रूप में अंकित करने का सम्यक् प्रयत्न किया है। श्रीकृष्ण का रूप-वैभव, उनकी पराक्रम गाथा, नन्द एवं यशोदा का उनके प्रति वात्सल्य, उद्धव का सख्य भाव और गोपियों के प्रति उनके स्नेह भाव का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस प्रकार काव्य के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण को समग्र रूप में उपस्थित करने का कवि ने सफल प्रयास किया है। इस कवि ने गोपिकाओं का चित्रण श्रीकृष्ण से भी अधिक सजीव रूप में उपस्थित किया है। अनुनय-विनय, ईर्ष्या, मान आदि के द्वारा उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया है। प्रियतम के अभाव में उनके लिए जीवित रहना असंभव

१- गोपी सन्देश : नरसिंह महेता पद २

या है। गोपियों के विरह व्याकुल हृदय को रंजित करने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। क्रियाशील और चिंतनशील उद्धव के चरित्राकंन में भी कवि सफल रहा है। उद्धव का यह चरित्र अपने आप में निश्चय ही विशिष्ट कहा जा सकता है। अति वात्सल्य माता के रूप में यशोदा का चरित्र भी उल्लेखनीय है।

कवि केशवदास ने अपने 'गोपी सन्देश' में किसी भी पात्र को प्राधान्य दिया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। केशवदास द्वारा चित्रित गोपियां नंददास जी की गोपियों के समान कठोर स्वभाव की, तीखी-तीव्र व्यंग्यकारी वाणी करनेवाली, मनमौजी और विलक्षण हैं। सब कुछ बे-रोकटोक बोलने की आदत लिए हुए हैं।

ब्रेहेदेव की गोपियों का कृष्ण-प्रेम असीम है। उद्धव का कठोर हृदय भी उनकी भाव-प्रेरण वाणी के कारण कोमल बन जाता है और उन्हें वृन्दावन में वृक्ष या लता के रूप में जन्म धारण करने की इच्छा होती है -

"कांई वृक्ष वेगी, वृंदावन्य शें न थतरुं ?
रहि व्रजनारयनी पा-रज लागत,
ती कृष्ण जी का अंतर त्यूं ?"[१]

ब्रेहेदेव की गोपियां प्रयत्न करने पर भी धीर और गंभीर नहीं बन सकी हैं। वे संवेदनशील और स्पष्ट-वक्ता हैं। उद्धव के चरित्र को भी प्रस्तुत काव्य में निखार प्राप्त हुआ है। वे मात्र ज्ञानी के रूप में नहीं किन्तु अनुभूतिशील, प्रेमपूर्ण सखा के रूप में चित्रित हुए हैं।

चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में भीम की कलम अधिक शक्तिशालिनी और तेजस्विनी प्रतीत होती है। यशोदा का ममत्वभाव, वात्सल्य और पश्चाताप से युक्त चरित्र उज्ज्वल और हृदयस्पर्शी बना है। भीम की गोपियां अधिक वाचाल हैं। तर्क-वितर्क के क्षेत्र में प्रबल ज्ञानी उद्धव को भी उनका प्रतिकार करना मुश्किल हो जाता है। विरह ताप से पीड़ित गोपियों की आंतरिक व्यथा को व्यक्त करने में कवि को अभीप्सित सफलता नहीं मिली। श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम, पुनर्मिलन के लिए अविचल आत्म-विश्वास

१- भ्रमरगीत : ब्रेहेदेव कडवुं १४

और प्रेम-भक्ति की महिमा के वर्णन में कवि सफल रहा है। उद्धव का पात्र अत्यंत दीन और आकर्षण रहित है। उनके अहंकारी स्वभाव की कवि रक्षा नहीं कर सका है। अहंकारी के तर्कों में जो प्राबल्य और तीव्रता होनी चाहिए उसका उद्धव की ज्ञानभरी बातों में अभाव होने के कारण उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

विश्वनाथ ने काव्यारंभ में देवकी के मुख से श्रीकृष्ण को मथुरा में क्यों अच्छा नहीं लगता प्रश्न उपस्थित कर अपनी इस कृति में नावीन्य लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। पुत्र वात्सल्य माता और श्रीकृष्ण के गोकुल प्रेम की अभिव्यक्ति आस्वाद्य बनी है। माता देवकी को आश्चर्य होता है कि अच्छी तरह से देखभाल करने पर भी उसका पुत्र खोया-खोया सा क्यों रहता है -

"हुं आवुं जारी सूखड़ी,
मारा सुंदर शाम -शरीर।
निसाजो फूंडो करी,
कां नेत्रे भरो छो नीर ?"[१]

इस कवि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने देवकी के पात्र को उदात्त रूप में प्रस्तुत किया है। वह भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने पुत्र को मनाने का प्रयत्न करती है। कोटि काम छोड़कर वह पुत्र को प्रसन्न देखना चाहती है। इस प्रकार देवकी का मातृत्व अत्यंत हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। पात्रों को अनुपम रूप देने में कवि विश्वनाथ का सामर्थ्य बेजोड़ है। एक मनोवैज्ञानिक की तरह मानव मन और हृदय का प्रस्तुत काव्य में विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत काव्य में वसुदेव भी एक स्नेही पिता के रूप में उपस्थित हुए हैं। यशोदा के प्रति देवकी और वसुदेव ने सद्भाव प्रकट कर अपने सौजन्यपूर्ण विशुद्ध हृदय का परिचय दिया है। दोनों पात्र आभिजात्यपूर्ण और गौरव-युक्त हैं। बु०बु वसुदेव ने देवकी को खूब समझाया है कि श्रीकृष्ण प्रेम के भूखे हैं, समृद्धि के नहीं -

"मोहन तुं मन मानसे, प्रेमे पूरण नारय।
सामग्री शा कामनी, स्नेह बिना संसार ?"[२]

१- प्रेम - पचीसी : विश्वनाथ जानी पद १

२-

विश्वनाथ के द्वारा चित्रित कृष्ण धृष्ट नहीं किन्तु विनम्र, कृतज्ञ और पश्चाताप से परिपूर्ण मोहन हैं। ऐसा लगता है मानो प्रणयपूर्ण कृष्ण के अंतर मन को कवि ने पहचान लिया है। श्रीकृष्ण ने अपनी गोपियों को अनुनय-विनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया है। विरह की तुलना में मिलन का कोई महत्व नहीं -

"ना आवे, संगम ब्रेहने तोले,
मोहोटा मुनि बोले ;
उभये अंतर जुवो,
जे कोण पक्ष सारो ?

गोपियों के चरित्र-चित्रण में भी कवि ने मौलिकता का परिचय दिया है। श्रीकृष्ण को भोजन कराने की उनकी उत्कट इच्छा की पूर्ति वे उद्धव को खिलाकर करती हैं। उद्धव भाव विह्वला नारियों का प्रेम देखकर अत्यंत प्रसन्न हो जाते हैं और ऽवऽऽ उनका हृदय परिवर्तन हो जाता है। काव्यांत में उद्धव का व्यक्तित्व नवोन्मेष धारण करता है। उन्हें प्रेम-लक्षणा भक्ति का रहस्य और सर्वोपरिता का परिचय मिल जाता है और व्रजलता बनने की इच्छा अभिमान रहित होकर व्यक्त करते हैं। उद्धव की परिवर्तित ऽवऽऽखऽ मन:स्थिति का आलेखन कवि ने इन शब्दों में किया है :-

"हुं हरिना किंकर नो किंकर,
प्रेम आवडो राखे ?
अमृतनी शी कहुं उपमा ?
मधुर वचन मुख भाखे उद्धव।"

पात्रालेखन में प्रेमानन्द की कलम भी कौशल्यपूर्ण कही जा सकती है। कवि ने काव्यारंभ में ही श्रीकृष्ण की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। हृदय-मंथन द्वारा उनकी आंतरिक व्यथा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। श्रीकृष्ण उद्धव को एकांत में बुलाकर सजल नेत्रों के साथ अपनी आंतरिक व्यथा उनके सामने रखते हैं। इस कवि ने अपने पात्रों को अद्भुत गतिशीलता प्रदान की है। शब्दचयन, वर्ण विन्यास,

भाषाभिव्यक्ति और प्रसंग विन्यास द्वारा परंपरानुगत पात्रों को अभिनवरूप में उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। उद्धव के आगमन को कृष्ण का आगमन समझकर हर्ष का अनुभव करती यशोदा का कवि ने सजीव चित्र इन शब्दों में अंकित किया है -

"मात उठी, वेणी छूटी,
घणु हाकली हरखे भरी ;
आंबा कर करी भेटवा धाई,
आव मठोये गिहरि ।"[१]

अनेक प्रकार से पुत्र के प्रति प्रेम व्यक्त करती यशोदा के हृदय की स्निग्धता को कवि ने सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। एक मनोवैज्ञानिक के समान उसके चरित्र का आकलन किया है।

प्रेमानन्द की गोपियां उन्मत्त हैं। रथ देखकर वे बिना सोचे समझे प्रहार करने लगती हैं -

"प्राण प्रथम हरी गयो,
हवे केवा आव्यो देह ।"[२]

श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य प्रेम है। उनके शरीर में नंदलाल की पूर्णमूर्ति विराजमान है। अत: योग साधना के लिए कोई अवकाश नहीं। उनकी एक मात्र इच्छा हरि ! हरि! करते हुए हरि रूप बनने की है। इस प्रकार काव्य के अंत में कवि ने गोपियों को अत्यंत भव्यरूप दिया है। काव्य में प्रयुक्त उपालंभों द्वारा गोपियों के वाक्चातुर्य और उनकी विरह-व्यथा का परिचय मिलता है। जब तक प्रभु स्वयं आकर विरह परिताप का शमन नहीं करते तब तक उनका मन विश्रांति प्राप्त नहीं करता -

"लेश न लागे मीठी रे"[३]

१- भ्रमरगीता -प्रेमानन्द कडवुं -१२५

२- भ्रमरगीता : प्रेमपचीसी कडवुं १२८

३- भ्रमर पचीसी : प्रेमानन्द पद १६

कवि सुन्दर ने श्रीकृष्ण को कोमल हृदय से मुक्त स्नेह मूर्ति खड़ी की है। सभी पात्र श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त और मंत्र-मुग्ध से प्रतीत होते हैं। सुन्दर की गोपियां अत्यंत विवेकी और शिष्टाचार का निर्वाह करनेवाली हैं। उपालंभों में उनकी बौद्धिक चेतना के दर्शन होते हैं। वे अश्रुभरी आंखों के साथ श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करती हैं -

"कहो, कृष्ण क्यारे देखशुं ?

बड़े नयणे जल-धार।"[१]

कवि कल्याण कृत 'गरबी' में व्रजवनिता प्रियतम के वियोग में अपने आपको असहाय और दीन समझती है। श्रीकृष्ण के अभाव में वह मृत्यु का स्वागत करने के लिए तत्पर है। दुर्बल देह युक्त यह नारी जब यमुना तट पर जल भरने जाती है तब वहां नंदजी के लाल को न देखकर असह्य व्यथा का अनुभव करती है -

"देहलडी दुर्बल थई छे नाथ विना रे,

काया थई गई छे कंई बेहाल।

जमुना जल भरवाने जइए छिये रे,

तीरे न देखे मारे नंदजीनो लाल।"

गर्वोन्नत गोपी के विरह ताप को कवि ने उत्तम रूप से व्यक्त किया है।

कवि गोविन्दराम ने मुख्यतया तीन पात्रों का चरित्रांकन किया है -(१) यशोदा (२) गोपियां और (३) कृष्ण। इनमें यशोदा के पात्र के आलेखन में कवि सर्वाधिक सफल रहा है। माता यशोदा का वात्सल्यपूर्ण भाव-विभोर हृदय देखते ही बनता है। गोपियों का प्रेमिका की अपेक्षा भक्त रूप में विशेष चित्रण हुआ है। परिणामस्वरूप विरहिणी गोपियों के विरह वर्णन में तीव्रता का अभाव है। श्रीकृष्ण के आंतरिक व्यक्तित्व के उद्घाटन में कवि को सफलता नहीं मिली है। काव्य का हेतु श्रीकृष्ण का गौरवगान रहा हो ऐसा लगता है। इस परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में विश्वनाथ और प्रेमानन्द की तुलना में बहुत कम - प्रेमरंगीतकार रखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त समग्र विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि नाट्याभिनय के रूप में भ्रमरगीत काव्य के प्रयोग के कुछ ही उल्लेख मिलते हैं तथापि मध्यकाल में रासलीला के अंतर्गत भ्रमरगीतों का प्रयोग होता रहा होगा इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता । हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं के भ्रमरगीत काव्य में नाटकीय तत्वों का प्रचुरता से समावेश हुआ है । भ्रमरगीत रूप में रचित पदों की गेयता एवं संवादात्मकता गीति-नाट्य जैसी प्रतीत होती है । अस्तु, भ्रमरगीत काव्य का प्रयोग जहां रासलीला के अंतर्गत हुआ है वहीं उसे गीति नाट्य के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है । दोनों भाषाओं के कवियों ने भ्रमरगीत रूप में नाटकीय परिस्थितियों और तत्वों का समावेश करके युगीन आवश्यकता की पूर्ति तो की ही है साथ ही वे जनमानस के भी निकट आ गये हैं । भ्रमरगीत एक ऐसी विधा है जो मध्यकाल से आज तक सतत प्रवहमान है । इन गीतों का नाट्याभिलेखन दुरूह न होकर सरल एवं सहज है और इन्हें किसी भी खुले स्थान पर प्रस्तुत किया जा सकता है । अगले अध्याय में हम दोनों भाषाओं में निर्मित भ्रमरगीत के बाह्य सौन्दर्य की भी चर्चा करेंगे ।

000000
0000
00
0